कल्पमेधा

मानव जाति युग-युगांतर से उन स्वार्थी लोगों द्वारा अज्ञान में कैद रखी गई है, जिनका लक्ष्य मनुष्य के दिमागों को संकुचित और अव्यवस्थित बनाए रखना रहा है।

- आर जैफरिन

घोटाले का सबक

यह विचित्र है कि एक तरफ तो सरकारी विभागों में खाली पदों पर लंबे समय तक भर्ती की प्रक्रिया शुरू नहीं की जाती और जहां शुरू भी होती है वहां कभी पर्चाफोड़ गिरोह सक्रिय हो जाते हैं, तो कभी संबंधित महकमे के आला अधिकारी और मंत्री तक रिश्वत लेकर भर्तियां करते पाए जाते हैं। शायद ही कोई ऐसा राज्य हो, जहां सरकारी भर्तियों में रिश्वतखोरी और पक्षपात के मामले उजागर न हुए हों। ऐसे भी अनेक उदाहरण हैं, जब भर्तियों में व्यापक अनियमितता के आरोप के चलते उन्हें रद्द करना पड़ा। कई मामलों में मंत्री तक जेल गए। पश्चिम बंगाल का शिक्षक भर्ती घोटाला इसका ताजा उदाहरण है। करीब आठ साल पहले वहां सरकारी स्कूलों में पचीस हजार सात सौ तिरपन शिक्षकों और गैरशिक्षकों की भर्ती के लिए परीक्षा आयोजित की गई थी, जिसमें लगभग तेईस लाख अभ्यर्थियों ने हिस्सा लिया था। मगर जब नतीजे आए तो उसमें कई तरह की गड़बड़ियां पाई गई थीं। जिन अभ्यर्थियों के पास न्यूनतम अर्हता भी नहीं थी, वे वरीयता सूची में शीर्ष बीस की श्रेणी में आ गए थे। कई ऐसे लोगों को भी नौकरी दे दी गई, जिन्होंने भर्ती परीक्षा पास ही नहीं की थी। कम अंक पाने वाले भी वरीयता क्रम में ऊपर पहुंच गए थे।

इस मामले की शिकायत दो अभ्यर्थियों ने अदालत में की थी, जिसकी सुनवाई करते हुए मामले की जांच सीबीआइ को सौंप दी गई। उस जांच में धनशोधन का मामला उजागर हुआ और प्रवर्तन निदेशालय ने मामले को अपने हाथ में ले लिया था। उस संबंध में प्रदेश के शिक्षामंत्री पार्थ चटर्जी को गिरफ्तार कर लिया गया। फिर उनके और करीबी लोगों के ठिकानों पर छापे पड़े तो उनकी करीबी अर्पिता मुखर्जी को भी शिक्षक भर्ती घोटाले में संलिप्त पाया गया था। उन्हें भी गिरफ्तार किया गया। इन दोनों के ठिकानों से भारी मात्रा में नगदी, जेवर और जायदाद के कागज मिले थे। आरोप था कि उसमें अभ्यर्थियों से पांच से पंद्रह लाख रुपए रिश्वत लेकर भर्ती किया गया था। अब कोलकाता उच्च न्यायालय ने उस भर्ती प्रक्रिया को रद्द कर दिया और नए सिरे से भर्ती शुरू करने का आदेश दिया है। साथ ही यह भी कहा है कि उस प्रक्रिया के तहत भर्ती होकर नौकरी करने वालों को पिछले सात-आठ वर्षों का सारा वेतन वापस करना पड़ेगा। इस तरह उन लोगों की मनोस्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है। हालांकि पश्चिम बंगाल सरकार का कहना है कि उच्च न्यायालय का फैसला अवैध है और वह उस फैसले को उच्चतम न्यायालय में चुनौती देगी तथा शिक्षकों की नौकर सुरक्षित कराने का प्रयास करेगी।

वर्षों पहले हरियाणा में भी इसी तरह शिक्षक भर्ती घोटाले में तत्कालीन मुख्यमंत्री ओमप्रकाश चौटाला को जेल जाना पड़ा था। उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह के कार्यकाल में हुई शिक्षक भर्ती प्रक्रिया को मायावती ने अनियमितता का आरोप लगाते हुए रद्द कर दिया था। शिक्षकों की भर्ती के अलावा पुलिस भर्ती, पटवारी भर्ती, व्यापार मंडल भर्ती आदि में इसी तरह तरह अनियमितताओं के आरोप लगते रहे हैं। इस तरह सरकारी महकमों के लोग जरूर अपनी जेबें भर लेते हैं, मगर खमियाजा आखिरकार उन मेधावी युवाओं को भुगतना पड़ता है, जो वर्षों मेहनत और लगन से तैयारी करते हैं, मगर उनका हक कोई और ले उड़ता है। आखिर सरकारें इतने उदाहरणों के बावजूद क्यों कोई पारदर्शी और विश्वसनीय भर्ती प्रक्रिया नहीं बना पाई हैं।

कचरे के पहाड़

देश की राजधानी और व्यवस्था के स्तर पर अन्य जगहों के मुकाबले ज्यादा बेहतर होने के दावे के बावजूद अगर दिल्ली में कई जगह कचरे के पहाड़ खड़े दिखते हैं, तो यह अपने आप में एक अफसोसनाक तस्वीर है। विडंबना है कि लंबे समय से इस समस्या के उत्तरोत्तर गंभीर होते जाने और कई बार बड़ा मुद्दा बनने के बाद भी अब तक इसका हल निकालने की कोई गंभीर पहल नहीं दिखती। यह बेवजह नहीं है कि सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर हैरानी जताई है कि दिल्ली में हर रोज ग्यारह हजार टन ठोस शहरी अपशिष्ट पैदा होता है, जिसमें से तीन हजार टन कचरे का उचित निपटान नहीं किया जाता। शीर्ष अदालत ने राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र और आसपास के इलाकों में वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग की रपट पर कहा कि यह स्तब्ध करने वाली बात है कि ठोस कचरा प्रबंधन नियम, 2016 को लागू हुए आठ साल गुजर चुके हैं, मगर अब तक दिल्ली में इस पर ठीक से अमल नहीं हुआ है। दिल्ली में उपराज्यपाल और सरकार के बीच जिस तरह की खींचतान चलती रहती है, उसमें इसके लिए किसे जिम्मेदार माना जाएगा!

सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर दिल्ली नगर निगम, नई दिल्ली नगरपालिका परिषद और दिल्ली छावनी बोर्ड को नोटिस जारी किया है। क्या इन इकाइयों को अपने दायित्व का अहसास नहीं है? यह समझना मुश्किल नहीं है कि दिल्ली में अगर रोजाना ग्यारह हजार टन अपशिष्ट निकलता है और उसमें से तीन हजार टन कचरे का उचित निपटान नहीं हो पाता, तो आखिर उसका क्या होता है और आसपास के इलाकों की आबोहवा पर उसका क्या असर पड़ता होगा। गौरतलब है कि दिल्ली में भलस्वा, गाजीपुर और ओखला स्थित कचरा पट्टियों पर जितने बड़े पैमाने पर अपशिष्ट जमा होता गया है, उससे आसपास के इलाकों में कई तरह की समस्याएं पैदा हो गई हैं। सोमवार को गाजीपुर कचरा पट्टी में आग लग गई थी, जिसे बुझाने में अठारह घंटे लग गए। कचरे के निपटान की जिम्मेदारी सरकार के संबंधित नागरिक निकाय की है। मगर सवाल है कि उसकी निगरानी करने और पूरे कचरे के निपटान या प्रबंधन को सुनिश्चित करने का दायित्व किसका है?

बढ़ती आबादी, सिकुड़ते संसाधन

चीन का उदाहरण देकर जनसंख्या के मुद्दे को कम आंकना तर्कसंगत नहीं है। यह समझना होगा कि भारत जन-सघनता के मामले में चीन से तीन गुना आगे है।

रोहित कौशिक

संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष (यूएनएफपीए) की ताजा रपट के मुताबिक भारत की अनुमानित जनसंख्या 144.17 करोड़ हो गई है। इस तरह जनसंख्या के मामले में भारत विश्व में सबसे आगे है। चीन 142.5 करोड़ की जनसंख्या के साथ दूसरे स्थान पर है। रपट में बताया गया है कि अच्छी स्वास्थ्य सेवाओं के कारण भारत में मातृ मृत्यु दर में काफी गिरावट आई है। कहा जाता है कि चीन अब तक जनसंख्या के मामले में सबसे आगे था, इसके बावजूद वह विकास के मार्ग पर अग्रसर रहा। इसलिए ज्यादा जनसंख्या कोई समस्या नहीं है। दरअसल, चीन का उदाहरण देकर जनसंख्या के मुद्दे को कम आंकना तर्कसंगत नहीं है। यह समझना होगा कि भारत जन-सघनता के मामले में चीन से तीन गुना आगे है। चीन भौगोलिक रूप से बड़ा देश है। आबादी और संसाधनों का बोझ उन्हीं देशों पर ज्यादा पड़ता है, जहां आबादी का घनत्व सबसे ज्यादा होता है।

हालांकि हमारे देश की जनसंख्या वृद्धि दर में भी कमी देखी गई है। देश के एक बड़े तबके में इसे लेकर जागरूकता आई है और लोग ज्यादा आबादी के नुकसान भी समझने लगे हैं। हालांकि इस दौर में जो लोग जनसंख्या नियंत्रण कानून की बात कर रहे हैं, उसके राजनीतिक निहितार्थ आसानी से समझे जा सकते हैं। दुखद यह है कि सरकारी नीतियों के चलते हम अभी तक आबादी को संसाधन के रूप में परिवर्तित नहीं कर पाए हैं। जाहिर है कि ऐसी स्थिति में हमें आबादी बोझ ही दिखाई देगी। हमारे देश की आबादी का बड़ा हिस्सा युवा है। हमारे देश में बेराजगारी की स्थिति भी किसी से छिपी नहीं है। ग्रामीण इलाकों में भी रोजगार का संकट बढ़ा है। अगर सरकार चाहे तो बेरोजगारी दूर कर बड़ी आबादी को संसाधन के रूप में परिवर्तित कर सकती है, लेकिन सरकार अपनी विफलता छिपाने के लिए जरूरी मुद्दों को टालकर अन्य गैरजरूरी मुद्दों को जानबूझ कर खड़ा कर देती है।

हालांकि जनसंख्या को लेकर हुए अध्ययन बताते हैं कि कुछ छोटे और समृद्ध देशों को छोड़ दें तो कमोबेश सभी देशों की आबादी बढ़ रही है। यह अलग बात है कि किसी देश की आबादी ज्यादा बढ़ रही है तो किसी की कम। सवाल है कि भारत के संदर्भ में जनसांख्यिकी लाभांश के लिहाज से इस स्थिति को कैसे देखा जाए, जिसे इस सदी की शुरुआत से ही भारत की सबसे बड़ी शक्ति माना जा रहा है और इसके बल पर पूरी दुनिया को पीछे छोड़ देने की उम्मीद बांधी जा रही है। शासन की ओर से जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करने की सघन कोशिशें देश में आपातकाल के दौरान ही हुई थीं। उसके राजनीतिक परिणाम देखकर बाद की सरकारों ने ऐसी कोई कोशिश नहीं की। हालांकि जनसंख्या वृद्धि को वे भी एक समस्या मानती रहीं।

इक्कीसवीं सदी आने के बाद आबादी में युवाओं की बढ़ती संख्या को एक अच्छी चीज माना जाने लगा। मगर कोरोना महामारी के बाद माना जाने लगा है कि अधिक जनसंख्या कई तरह से हमारे लिए बड़ा खतरा है। सघन जनसंख्या वाले क्षेत्रों में विषाणुजनित रोगों के फैलने का

खतरा ज्यादा होता है। ऐसे में यह राहत की बात लगती है कि देश के नीति-निर्माताओं ने तीन-चार दशक पहले ही जनसंख्या विस्फोट से उत्पन्न खतरों को भांप लिया था। इसका फायदा यह हुआ कि इस दिशा में कुछ न कुछ प्रयास होते रहे। जबरन नसबंदी जैसे उपाय भले न

> जनसांख्यिकी लाभांश की आड़ लेकर हम जनसंख्या वृद्धि से आंखें नहीं मूंद सकते। हमें कुछ ऐसी नीतियां बनानी होंगी, जिससे जनता स्वयं इस मामले में रुचि ले। आपातकाल के दौरान हुए प्रयोगों का अनुभव बताता है कि जनसंख्या नियंत्रण की नीतियों और जनअवधारणों के बीच असंतुलन तथा संवादहीनता की स्थिति कायम रहेगी, तो बेहतर परिणाम सामने नहीं आएंगे। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि पिछले पचास वर्षों में सरकार तथा विभिन्न सामाजिक संगठन जनता के साथ ऐसा संवाद स्थापित करने में नाकाम रहे हैं।

दोहराए गए हों, लेकिन जनजागरण की मुहिम आधे-अधूरे ढंग से चलती रही। आज भी सरकार करोड़ों रुपए इससे जुड़े विज्ञापनों और परिचर्चाओं पर खर्च कर रही है, हालांकि इसके ठोस फायदे नहीं दिख रहे हैं। परिवार नियोजन नीतियों का भी ठीक ढंग से क्रियान्वयन नहीं हो पा रहा है। हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि जनसांख्यिकी लाभांश की बातें अपनी जगह सही हैं, लेकिन आज के दौर में पर्यावरण प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन जैसी बड़ी समस्याओं की जड़ में भी बेतहाशा बढ़ती जनसंख्या ही है। दरअसल, जनसंख्या बढ़ने से प्राकृतिक संसाधनों का दोहन बढ़ता है, जिससे बाकी सभी समस्याओं के तार जुड़े हुए हैं।

जाहिर है, जनसांख्यिकी लाभांश की आड़ लेकर हम जनसंख्या वृद्धि से आंखें नहीं मूंद सकते। हमें कुछ ऐसी नीतियां बनानी होंगी, जिससे जनता स्वयं इस मामले में रुचि ले। आपातकाल के दौरान हुए प्रयोगों का अनुभव बताता है कि जनसंख्या नियंत्रण की नीतियों और जनअवधारणों के बीच असंतुलन तथा संवादहीनता की स्थिति कायम रहेगी, तो बेहतर परिणाम सामने नहीं आएंगे। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि पिछले पचास वर्षों में सरकार तथा विभिन्न सामाजिक संगठन जनता के साथ ऐसा संवाद स्थापित करने में नाकाम रहे हैं। हमें यह अच्छी तरह समझना होगा कि जनसंख्या नियंत्रण कोई ऐसा लक्ष्य नहीं है, जो सरकारी नीतियों और योजनाओं के माध्यम से हासिल हो जाएगा। जब तक इस समस्या की गंभीरता आम जनता नहीं समझेगी, तब तक इस संबंध में किसी सार्थक परिणाम की उम्मीद बेमानी है।

आज भी देश में बड़ी संख्या में लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। इस तबके में शिक्षा का प्रसार कम है। बड़ी संख्या में लोग निरक्षर हैं। ऐसी स्थिति में बड़े-बड़े विज्ञापन और परिचर्चाएं किस हद तक प्रभावी होंगी, यह विचारणीय प्रश्न है। इस तबके को गर्भनिरोध के साधन उपलब्ध कराना तथा इनका सही ढंग से इस्तेमाल करना सिखाना भी एक बड़ी चुनौती है। जब तक हम इस चुनौती को स्वीकार नहीं करेंगे तब तक जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना एक दिवास्वप्न ही बना रहेगा। इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि आज जनसंख्या नियंत्रण के अधिकांश कार्य कागजों पर ही चल रहे हैं। इस काम में लगी अधिकांश संस्थाएं भी, कुछ अपवादों को छोड़कर, लाभ कमाने के लिए ही कार्य कर रही हैं। सरकारी नीतियों का आलम यह है कि इस दौर में भी प्रलोभन देकर नसबंदी कराई जा रही है। इस कार्य के लिए किसी प्रकार का प्रलोभन नहीं दिया जाना चाहिए। प्रलोभन के आधार पर इस समस्या को जड़ से समाप्त नहीं किया जा सकेगा, बल्कि ऐसी स्थिति में भ्रष्टाचार को ही बढ़ावा मिलेगा।

शिक्षा और आर्थिक विकास की सीमित पहुंच के चलते समाज के बड़े हिस्से में बच्चों को कमाई का जरिया माना जाता रहा है, जबकि जनसांख्यिकी लाभांश की अवधारणा उन्हें शिक्षित-प्रशिक्षित कार्यशक्ति मानने पर आधारित है। ऐसे में, पहली जरूरत बच्चों को लेकर लोगों की सोच बदलने, फिर उनके बीच गर्भनिरोधकों का व्यापक पैमाने पर मुफ्त वितरण करने और कोई जटिलता आने पर उसका तत्काल समाधान निकालने के लिए व्यापक नेटवर्क विकसित करने की है। आज जनसंख्या नियंत्रण से संबंधित कोई भी योजना लागू करते समय व्यावहारिक पहलुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए। लोगों में समय रहते यह समझदारी पैदा की जानी चाहिए कि जनसंख्या वृद्धि से देश का जो नुकसान होगा सो होगा, पर उससे पहले उनकी अपनी समस्याएं बढ़ जाएंगी।

खेल से मेल

राजेंद्र जोशी

यह एक सामान्य तथ्य है कि बच्चे देश और दुनिया की संभावना हैं। भविष्य में चंद्रमा की तरह चमक बिखेरने वाले बचपन को पल्लवित करने की हसरत मनुष्य में प्रारंभ से ही रही है। बचपन सोच-विचार और कल्पना की दीवार पार कर बच्चों के हुनर को जानने और समझने का अवसर है। यह भावुकता, संवेदनशीलता और कल्पनाशीलता का सुखद गुलदस्ता है। बच्चों का मन मोह लेने वाला मंजर गढ़ना मुश्किल काम है, क्योंकि उनके मनोविज्ञान को समझना हर समय एक चुनौती रहती है और यह आसान नहीं है। बच्चों को सोचने-विचारने और सुनने का अवसर घर से अधिक विद्यालय में मिलता है। विद्यालय में पढ़ने के साथ-साथ खेलने-कूदने, मस्ती करने, एक दूसरे पर शब्दों के बाण चलाने से बच्चों को आनंद तो मिलता ही है, उन्हें प्रशिक्षण भी मिलता है। यह जरूरी है कि बच्चों का मानसिक और शारीरिक विकास साथ-साथ होता रहे। एक समय बच्चों को ज्ञान देने के साथ-साथ विज्ञान और व्यावहारिक ज्ञान जंगलों में बने गुरुकुल में गुरु दिया करते थे। गुरुकुल का स्थान आज के दौर में जब विद्यालयों ने ले लिया तो वहां मौजूद खेल का मैदान सबसे बड़ा मानसिक संतुलन बनाने की जगह है।

दुनिया मेरे आगे

> अध्ययनों में यह सिद्ध हुआ है कि जिन स्कूलों में शारीरिक शिक्षक रहे हैं, वहां अनुशासनहीनता की घटनाएं कम हुई हैं। इसमें अभिभावकों की भी जिम्मेदारी बनती है कि जिन विद्यालयों में खेल मैदान नहीं हैं, वहां इस सुविधा के लिए वे जागरूकता पैदा करें और सरकार के पास प्रस्ताव भेजें।

याद रखने की जरूरत है कि ओलंपिक खेलों तक पहुंचने वाले खिलाड़ियों की भी शुरुआत कभी प्राथमिक स्कूलों के छोटे या बड़े खेल के मैदान से ही हुई होती है। कुछ समय पहले केरल में खेल के मैदानों को लेकर एक नई शुरुआत हुई है। वहां के माननीय उच्च न्यायालय ने बच्चों की मानसिकता को देखते हुए एक बेहद अहम निर्णय सुनाया कि अगर किसी विद्यालय के पास खेल का मैदान नहीं है तो उसकी मान्यता रोक देनी चाहिए। दरअसल, इस फैसले से इसका महत्त्व स्थापित होता है कि प्रत्येक स्कूल के साथ खेल मैदान होना जरूरी है। यह बात सही भी है कि शिक्षा को केवल कक्षा तक सीमित रखना उचित नहीं है, बच्चों के भीतर कौशल और कल्पनाशीलता तभी विकसित होगी, जब वह खेल के मैदान में सीखने के वातावरण का हिस्सा बनेंगे।

बच्चों के भविष्य के लिए खेल और खेल जैसी गतिविधियां उनके पाठ्यक्रम का हिस्सा रही हैं। पर बदलते परिवेश में रट्टा मारने के चलन ने सब कुछ बिगाड़ कर रख दिया। स्कूल के माध्यम से खेल के मैदान में बच्चों में जीवन का कौशल आत्मसम्मान के साथ-साथ आत्मविश्वास पैदा करते है। बच्चों में निरंतर बढ़ रहे भय और तनाव, संकोच जैसे मनोविकारों को दूर करने का स्थान खेल के मैदान ही हो सकते हैं। ये मैदान बच्चे और विद्यालय के प्राण हैं।

मगर जमीनी हकीकत यह है कि बड़ी तादाद में स्कूलों में खेल मैदान तो क्या, बुनियादी सुविधाएं तक नहीं हैं। ऐसे में इस निर्णय का स्वागत करते हुए गंभीरतापूर्वक समीक्षा होनी चाहिए और इसे पूरे देश में लागू करना चाहिए। यहां यह भी महत्त्वपूर्ण है कि यह निर्णय केवल निजी विद्यालयों तक सीमित नहीं है। बच्चे किसी की संपत्ति नहीं हैं। वे देश की संपत्ति हैं, चाहे वे सरकारी स्कूल में पढ़ें या फिर निजी स्कूलों में। खेल के मैदान और अन्य सुविधाएं दोनों जगह बराबर मिलनी चाहिए। तभी उनके बचपन को बचाया जा सकता है। देश भर में हर जगह उगे निजी विद्यालयों को छोटी-सी इमारत में संचालित कर लिया जाता है। कई जगह सरकारी विद्यालय भी ऐसे दिख जाते हैं। इस पर किसी भी प्रकार का अंकुश नहीं होता। निजी विद्यालयों पर अंकुश लगाकर उनकी मान्यताओं को रद्द किया जा सकता है, लेकिन नियम बच्चों के भविष्य का है जो सबके लिए एक समान होने चाहिए। बच्चा चाहे कहीं भी शिक्षा ग्रहण करे, उसे आवश्यक सुविधाओं से वंचित नहीं किया जा सकता। अन्यथा स्कूली शिक्षा का उद्देश्य अधूरा रह जा सकता है।

खेल के मैदान की सुविधा सुनिश्चित करना शिक्षा विभाग का नैतिक दायित्व है। अगर स्कूलों में पर्याप्त खेल मैदान नहीं हैं तो उस सरकारी या गैरसरकारी स्कूल में किसी भी तरह यह सुविधा उपलब्ध कराया जाना चाहिए। भले स्कूल के स्थान को बदल दिया जाए। यह उल्लेखनीय है कि शिक्षा पर गठित सभी आयोगों ने कक्षाओं में शिक्षण और सीखने के समांतर खेलकूद और अन्य रचनात्मक गतिविधियों के प्रभावी आयोजन के लिए अनुशंसाएं की हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी आजादी के सात दशक बाद ऐसा निर्णय न्यायालय को लेना पड़ रहा है। यह शासन की नीतिगत कसौटियों और प्राथमिकताओं को एक तरह का आईना है। देश और राज्य की सरकारों को इस पर गंभीरता से विचार करना होगा कि किसी भी स्थिति में विद्यालयों में खेल मैदान, पुस्तकालय, प्रयोगशाला और अन्य बुनियादी साधन सुविधाओं के साथ-साथ पाठ्यक्रम निर्धारित होना चाहिए। केवल रट कर याद करने के चलन और इसके परिणाम को देखकर विद्यालयों की गुणवत्ता का निर्णय नहीं किया जा सकता। ऐसे में ज्यादा अंक तो आ जाएंगे, लेकिन बच्चों का मानसिक संतुलन कैसे सुनिश्चित होगा। इसलिए यह जरूरी है कि स्कूलों में न केवल उचित खेल मैदान और अन्य अपेक्षित भौतिक सुविधाएं हों, बल्कि पूर्णकालिक प्रशिक्षित योग्य शारीरिक शिक्षक भी पदस्थापित हों। हालांकि कई जगहों पर यह व्यवस्था होती है जो बच्चों के भविष्य के लिहाज से बेहतर है। अध्ययनों में यह सिद्ध हुआ है कि जिन स्कूलों में शारीरिक शिक्षक रहे हैं, वहां अनुशासनहीनता की घटनाएं कम हुई हैं। इसमें अभिभावकों की भी जिम्मेदारी बनती है कि जिन विद्यालयों में खेल मैदान नहीं हैं, वहां इस सुविधा के लिए वे जागरूकता पैदा करें और सरकार के पास प्रस्ताव भेजें। बच्चों के जीवन और भविष्य से जुड़े इस विषय पर सरकार और समाज को सामूहिक रूप से मंथन करने की जरूरत है।

सेहत से खिलवाड़

हाल में आई एक खबर के मुताबिक, पौष्टिक आहार या पेय पदार्थ के रूप में कुछ खास ब्रांड के उत्पाद शिशुओं के स्वास्थ्य की बेहतरी या बढ़ोतरी में सक्षम नहीं हैं, बल्कि ये स्वाद या जायका बदलते हैं। इन आहारों और पौष्टिक पदार्थ को बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियां पश्चिम देशों और भारत में सौतेला व्यवहार करती है। ये कंपनियां पश्चिम देशों के लिए उच्च गुणवत्ता की और भारत के लिए अपने उक्त उत्पादों में शर्करा यानी चीनी का मात्रा मानक तय मानकों से अधिक का प्रयोग करते हैं। मसलन, एक बहुप्रचारित ब्रांड भारत सहित कम समृद्ध देशों में बेचे जाने वाले शिशु के दूध में चीनी मिलाती है, लेकिन यूरोप या ब्रिटेन जैसे अपने प्राथमिक बाजारों में नहीं। यह रहस्योद्घाटन तब सामने आया जब स्विस जांच संगठन 'पब्लिक आई' और इंटरनेशनल बेबी फूड एक्शन नेटवर्क ने कंपनी के एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में विपणन किए जाने वाले शिशु खाद्य पदार्थों के नमूने जांच के लिए बेल्जियम की प्रयोगशाला में भेजे। इससे पता चलता है कि महज मुनाफे के लिए कुछ कंपनियां हमारे बच्चों के जीवन के साथ कैसा खिलवाड़ करती हैं।

- युगल किशोर राही, छपरा, बिहार

भक्ति की जगह

आजकल हम देखते हैं कि कोई भी त्योहार या पूजा-पाठ का अवसर हो, धार्मिक स्थलों पर भारी भीड़ उमड़ पड़ती है। पूजा स्थलों के बाहर बाजार भी लग जाते हैं। ऐसी खबरें भी आती रहती हैं कि अगर किसी के पास पैसे हैं तो उसे मंदिर में भगवान के दर्शन करने के लिए भी ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ेगा। अतिमहत्त्वपूर्ण लोगों के लिए अलग से लाइन लगने की भी खबर आती रहती है। मगर जो आदमी सच्ची श्रद्धा से मंदिर जाता है या जिसकी जेब में पैसा नहीं होता, असली परीक्षा उसके धैर्य की होती है। उसे घंटों लाइन में लगना पड़ता है। कई बार तो उन लाइनों में भगदड़ मच जाती है, जिसमें कई लोगों की मौत हो जाती है और कई घायल हो जाते हैं। जबकि भगवान को मिलने के लिए धार्मिक स्थानों में पूजा-पाठ या धूपबत्ती करने या चादर या पैसा चढ़ाने जरूरत नहीं है। हृदय साफ है, हम इंसान को इंसान समझते हैं, किसी की मुसीबत में काम आते हैं, तो यही ईश्वर की पूजा है।

- चरनजीत अरोड़ा, नरेला, दिल्ली

बदलता रुख

लोकतंत्र का उत्सव जारी है। आम चुनाव में हर वर्ग को मतदान करने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। पूरे देश में हर तरफ सभी बातचीत और बहस केवल होने वाले चुनाव पर आधारित ही हो रही हैं। आजकल आमतौर पर सभी चुनावों में युवाओं के साथ अन्य आमजन की अपने मताधिकार के उपयोग की सोच में बड़े बदलाव नजर आने लगे हैं। पहले लोग यह सोच कर कि हमारे एक वोट से क्या फर्क पड़ने वाला है, वोट डालने बाहर नहीं निकलते थे। वही लोग अब खुद आगे आकर वोट डालने में दिलचस्पी लेने लगे हैं। लोकतांत्रिक प्रणाली मे ये शुभ लक्षण हैं। मगर इसी मुताबिक देश भर में मतदान के फीसद में भी बढ़ोतरी होनी चाहिए। देश में सात चरणों मे होने वाले चुनाव के परिणाम साबित कर देंगे कि जनता ने किसे चुना है और किसे अस्वीकार कर दिया है। मगर असली कसौटी यह है कि सत्ता में पहुंचने के बाद कौन-सा पक्ष आम जनता के हक में नीतियां और नियम बनाता हैं।

- नरेश कानूनगो, देवास, मप्र

रंगमंच का संदेश

रंगमंच की दुनिया में नाटकों के माध्यम से किसी भी संदेश को आम आदमी तक आसानी से पहुंचाया जाता है। नाटकों के कई स्वरूप हैं। हास्य व्यंग्य, अंधविश्वास, भ्रष्टाचार पर चोट भी यह चोट करता है। सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध भी नाटक किए जाते हैं। हिंदी रंगमंच के पुरोधा भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अनेक नाटकों का आज भी मंचन होता है। हिंदी रंगमंच ने न जाने कितने अनमोल कलाकरों को जन्म दिया। नाटकों में अभिनय करते समय अभिनेता की वेश-भूषा, मंच सज्जा, सही उच्चारण के साथ संवाद बोलना बड़ी बात होती है। अभी चुनाव का समय है, तो कैसे लोग अधिक से अधिक मतदान कर सकें, इसके लिए भी जागरूक किया जा रहा है। इससे इसकी अहमियत का अंदाजा लगाया जा सकता है कि कुछ सार्थक प्रस्तुतियां जनता को वास्तविक मुद्दों पर मतदान करने को प्रेरित कर जाती हैं।

- प्रसिद्ध यादव, बाबूचक, पटना

हमें लिखें, हमारा पता : edit.jansatta@expressindia.com | chaupal.jansatta@expressindia.com

नई दिल्ली

www.readwhere.com

कम मतदान
चिन्ता का विषय

कम मतदान चिन्ता का विषय है। सभी पार्टियों को इसकी जिम्मेदारी लेकर यह प्रवृत्ति उलटने का प्रयास करना चाहिए। वर्तमान चुनाव में चिन्ता का प्रमुख कारण खासकर हिंदी पट्टी में कम मतदान है। इस प्रवृत्ति ने राजनीतिक पार्टियों में खतरे की घंटियां बजा दी हैं और उनको इस निष्क्रियता के जमीनी कारणों पर गहराई से विचार करने तथा लोकसभा चुनाव के बाकी चरणों में मतदाताओं की सहभागिता बढ़ाने की रणनीति बनाने को मजबूर किया है। हिन्दी हृदय प्रदेश का असाधारण चुनावी महत्व है, लेकिन यहां 19 अप्रैल को मतदान का प्रतिशत निराशाजनक रूप से कम रहा। भारतीय निर्वाचन आयोग के आंकड़ों अनुसान यहां लगभग 62 प्रतिशत मतदान हुआ, जबकि 2019 में लोकसभा चुनाव के यहां 69.43 प्रतिशत मतदान हुआ था। लेकिन, यह प्रवृत्ति कोई स्थानीय परिघटना नहीं है क्योंकि 21 राज्यों तथा संघशासित क्षेत्रों के 102 लोकसभा चुनाव क्षेत्रों में मतदान हुआ था। क्या इसका कारण भयानक गरमी या अन्य जरूरी काम थे? यदि इसका संबंध मौसम से है तो बात समझ में आती है, पर यदि इसका कारण राजनीतिक निराशा है तो यह गंभीर चिन्ता का विषय है। इसका कारण अनुपयुक्त ढांचागत संरचनायें, मतदान केन्द्रों पर लंबी-लंबी कतारें तथा मतदान केन्द्रों तक पहुंचने में कठिनाई जैसी 'लाजिस्टिक' चुनौतियां भी हो सकती हैं। भारतीय निर्वाचन आयोग-ईसीआई के अनेक प्रयासों के बावजूद बड़ी संख्या में मतदातों ने अपने वोट डालने के लिए बाहर जाना उचित नहीं समझा। गर्मियों में हमारे देश में अनेक चुनाव हुए हैं जहां मतदाताओं की मतदान केन्द्रों पर भीड़ रही। हो सकता है कि

मतदाताओं की कम उपस्थिति का कारण राजनीतिक व्यवस्था में खोती हुई दिलचस्पी हो, हालांकि इस बारे में अभी कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। अनेक मतदाता राजनीतिक प्रक्रिया से स्वयं को अलग समझ सकते हैं। उनको लगता है कि उनके वोटों का नीति-निर्माण पर समुचित प्रभाव नहीं पड़ता है या उनके सरोकारों पर गौर नहीं किया जाता है।

इस निराशा का कारण अक्सर राजनीतिक पार्टियों द्वारा अपने वादे पूरे न करना हो सकता है। इससे मतदाता स्वयं को ठगा अनुभव करते हैं। परंपरागत रूप से शहरी क्षेत्रों में मतदान का प्रतिशत हमेशा कम रहा है, पर अब ग्रामीण क्षेत्रों के मतदाता भी संभवत: मतदान में ज्यादा दिलचस्पी नहीं लेते हैं। कम परिवहन सुविधाओं वाले क्षेत्रों में मतदान केन्द्रों तक पहुंचना, खासकर वृद्धों तथा दिव्यांगों के लिए बहुत कठिन हो सकता है। मतदान का एक चिन्ताजनक आयाम पहले चरण में नगालैंड के 6 जिलों में शून्य मतदान है। यह अभूतपूर्व तथा आश्चर्यजनक है। इस क्षेत्र की एक संस्था स्थानीय स्तर पर अलग 'प्रशासनिक व्यवस्था' चाहती थी और आश्वासन न मिलने पर उसने मतदाताओं से मतदान बहिष्कार का आह्वान किया था। कारण जो भी हो, कम मतदान देश के लिए शुभ संकेत नहीं है। कुछ चीजें मतदाताओं में निष्क्रियता का कारण बनती हैं। इसमें सामाजिक व आर्थिक आयाम महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जनसंख्या का एक हिस्सा खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी, निरक्षरता व बेरोजगारी जैसे मुद्दों का सामना करता है और इस कारण चुनाव प्रक्रिया में उसकी सहभागिता प्रभावित होती है। हिन्दी हृदय प्रदेश में 'पहचान की राजनीति' तथा 'ध्रुवीकरण' से भी मतदाताओं में निराशा पैदा हो सकती है। राजनीतिक पार्टियों को ऐसे में मतदाताओं के प्रति अपनी ऐसी प्राथमिकतायें निर्धारित करनी चाहिए जो चुनाव चक्रों से आगे जाती हों। मतदाताओं से संवाद विकसित करना तथा उनमें लगातार संप्रेषण व पारदर्शी प्रशासन से विश्वास पैदा करना भी जरूरी है।

मायावती का राजनीतिक दांव

बसपा नेता व पूर्व मुख्यमंत्री मायावती ने एक बार फिर पश्चिमी उत्तर प्रदेश को अलग राज्य बनाने का मुद्दा उठाया है। इससे संभवत: वे आने वाले दिनों में राजनीतिक रूप से प्रासांगिक रहेंगी।

सिद्धार्थ मिश्रा
(लेखक, राजनीति विश्लेषक हैं)

बसपा नेता व उत्तर प्रदेश की पूर्व मुख्यमंत्री सुश्री मायावती ने एक बार फिर पश्चिमी उत्तर प्रदेश को अलग राज्य बनाने का मुद्दा उठाया है। इससे संभवत: वे आने वाले दिनों में राजनीतिक रूप से प्रासांगिक बनी रहना चाहती हैं। मायावती ने यह मुद्दा लोकसभा चुनाव के ठीक पहले उठाया है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में लोकसभा चुनाव का पहला चरण पूरा हो गया है। 19 अप्रैल को यहां सहारनपुर, कैराना, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, नगीना, मुरादाबा, रामपुर व पीलीभीत चुनाव क्षेत्रों में मतदान हो गया है। लोकसभा चुनाव में दूसरे चरण का मतदान 26 अप्रैल को होगा। इसमें अमरोहा, मेरठ, बागपत, गाजियाबाद, गौतमबुद्ध नगर, बुलंदशहर, अलीगढ़, मेरठ व मथुरा के लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों में मतदान होगा।

इनमें से बुलंदशहर आरक्षित सीट है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश की इन सीटों पर बहुजन समाज पार्टी-बसपा नेता तथा उत्तर प्रदेश की पूर्व मुख्यमंत्री मायावती ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश को 'अलग राज्य' बनाने का पुराना मुद्दा फिर से उठाया है। संभवत: ऐसा कर वे आने वाले समय में प्रदेश की राजनीति में प्रासांगिक बनी रहना चाहती हैं। उन्होंने अपनी इस मांग के लिए संविधान निर्माता डा. बी.आर. अंबेडकर का जन्म दिवस चुना। इस अवसर पर मायावती ने मुजफ्फरनगर में आयोजित एक बड़ी रैली में महत्वपूर्ण घोषणा करते हुए कहा कि यदि उनकी पार्टी सत्ता में आई तो वे पश्चिमी उत्तर प्रदेश को अलग राज्य का दर्जा देंगी। उन्होंने केन्द्रीय सत्ता में आने पर पश्चिमी उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद उच्च न्यायालय की पीठ गठित करने का वादा भी किया। मायावती की इस घोषणा से एक बार फिर पश्चिमी उत्तर प्रदेश को अलग राज्य का दर्जा देने का मामला सुर्खियों में आ गया।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश को अलग 'हरित प्रदेश' बनाने की कल्पना राष्ट्रीय लोकदल के पूर्व नेता स्वर्गीय चौधरी अजीत सिंह ने की थी। अजीत सिंह पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सबसे कद्दावर नेता तथा देश के पूर्व प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह के पुत्र थे। 'हरित प्रदेश' की अवधारणा के समर्थकों का कहना था कि बाबा साहेब डा. भीमराव अंबेडकर ने उत्तर प्रदेश को तीन अलग-अलग राज्यों-पश्चिमी, मध्य व पूर्वी में बांटने की अवधारणा पेश की थी। अंबेडकर का उद्देश्य उत्तर प्रदेश को छोटे राज्यों में बांट कर प्रशासन को बेहतर बनाना था।

1955 में डा. अंबेडकर ने उत्तर प्रदेश को तीन राज्यों में बांटने की परिकल्पना अपनी पुस्तक 'थाट्स आन लिंग्विस्टिक स्टेट्स', यानी भाषाई आधार पर राज्यों के गठन पर विचार में की थी। उन्होंने उत्तर प्रदेश को तीन राज्यों में बांट कर पूर्वी उत्तर प्रदेश की राजधानी इलाहाबाद तथा पूर्वी क्षेत्र की राजधानी कानपुर में बनाने की कल्पना भी की थी। बहुजन समाज पार्टी-बसपा ने यही विचार सामने रख कर 2011 में राज्य के विभाजन का प्रस्ताव रखा था। मुख्यमंत्री के रूप में अपने शासनकाल में मायावती ने उत्तर प्रदेश विधानसभा में उत्तर प्रदेश राज्य के पुनर्गठन के बारे में एक प्रस्ताव भी पास कराया था। इस प्रस्ताव के अनुसार उत्तर प्रदेश को चार छोटे राज्यों-पश्चिमी, मध्य, पूर्वी व बुंदेलखंड में बांटा जाना था। इसके पहले वर्ष 2000 में उत्तर प्रदेश के सभी पहाड़ी जिलों को अलग कर अलग 'उत्तराखंड' का गठन किया जा चुका था। लेकिन अनेक राजनीतिक विश्लेषकों के दृष्टिकोण से सुश्री मायावती द्वारा उत्तर प्रदेश के विभाजन का प्रस्ताव डा. अंबेडकर की अवधारणा के उलट चुनावी गणित पर आधारित था। जब सुश्री मायावती ने पश्चिमी उत्तर प्रदेश को अलग राज्य बनाने का प्रस्ताव सामने रखा था तब उनके दिमाग में इस क्षेत्र में रहने वाली बड़ी संख्या में दलित व मुस्लिम जनसंख्या थी।

मायावती ने अपने इस प्रस्ताव से 'दलित-मुस्लिम' गठजोड़ को मजबूत बनाने का प्रयास किया था। इस गठजोड़ ने 2007 में समाजवादी पार्टी-सपा के मुस्लिम-यादव गठजोड़ को पराजित कर सत्ता पर कब्जा कर लिया था। उस समय बसपा को सवर्ण समाज का भी व्यापक सहयोग मिला था जिससे मायावती के नेतृत्व में बसपा प्रदेश में पूर्ण बहुमत की सरकार बनाने में सफल हुई थी।

इस प्रकाशन के लिए इस शताब्दी के आरंभ में रिपोर्टर के तौर पर काम करते हुए हमें यह अच्छी तरह याद है कि उस समय जमीनों पर अपने अधिकार के चलते जाटों तथा उच्च जातियों ने दलितों को चुनाव प्रक्रिया में हाशिये पर धकेल दिया था। उस समय इस समाचार पत्र के संपादक स्वर्गीय डा. चंदन मित्रा ने इस रिपोर्टर की स्टोरी को एक हेडलाइन दी थी-'फेयर पोल्स, फ्री आफ दलित्स'। इसका संकेत इस ओर था कि दलितों की सहभागिता के बिना किसी चुनाव को निष्पक्ष व न्यायोचित कैसे कहा जा सकता है। इस स्थिति में बहुजन समाज पार्टी-बसपा के उभार से व्यापक बदलाव आया था। खासकर 2004 में और उसके बाद लोकसभा चुनावों में बसपा के उभार के बाद पश्चिमी उत्तर प्रदेश के दलित इस प्रक्रिया में न केवल 'शाब्दिक', बल्कि 'भावनात्मक' रूप से सही अर्थों में जुड़े थे। इसी समय प्रदेश की राजनीति में दलित-मुस्लिम गठजोड़ उभरा था जिसने राज्य की चुनावी गणित को काफी सीमा तक बदल दिया था। बहुजन समाज पार्टी-बसपा को देश में अनेक राजनीतिक विश्लेषक दलित आंदोलनों की अग्रणी राजनीतिक शक्ति मानते हैं जिसके चलते दलित समाज के बड़े हिस्से में आत्मविश्वास और गौरव की भावना पैदा हुई है।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मुस्लिम जनसंख्या का भी राजनीतिक प्रभाव काफी बढ़ा था। 2011 की जनगणना के अनुसार, पश्चिमी उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या 71,217,132 थी जिसमें से 72.29 प्रतिशत हिन्दू तथा 39.17 प्रतिशत मुस्लिम थे। इसी प्रकार 'खड़ी बोली क्षेत्र' की जनसंख्या 29,669,035 थी जिसमें 59.19 प्रतिशत हिन्दू तथा 39.17 प्रतिशत मुस्लिम थे। इसी प्रकार 'बृज क्षेत्र' की जनसंख्या 29,754,755 थी जिसमें 82.78 प्रतिशत हिन्दू तथा 16 प्रतिशत मुस्लिम थे। 'खड़ी बोली' या हिन्दी भाषा की एक बोली बोलने वाले जिलों में मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, शामली, बागपत, गाजियाबाद, मेरठ, हापुड़, अमरोहा, बिजनौर, मुरादाबाद के कुछ हिस्से, गौतम बुद्ध नगर और बुलंदशहर शामिल हैं। बृज भाषा बोलने वाले जिलों में मथुरा, हाथरस, आगरा, अलीगढ़, एटा, गौतम बुद्ध नगर के कुछ क्षेत्र, बुलंदशहर, इटावा और मैनपुरी शामिल हैं।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कुछ जिलों में मुस्लिम जनसंख्या में काफी वृद्धि हुई है और जनगणना के आंकड़ों से भी इसकी पुष्टि होती है। जनगणना के आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, मुरादाबाद, रामपुर, ज्योतिबा फुले नगर, मेरठ और बरेली के आठ जिलों में मुस्लिम जनसंख्या जहां 1951 की जनगणना में 29.93 प्रतिशत थी, वहीं यह 2011 की जनगणना में बढ़ कर 40.43 प्रतिशत हो गई। मुस्लिम जनसंख्या में इस वृद्धि को देखते हुए भारतीय जनता पार्टी-भाजपा ने लगातार 'जनसंख्या नियंत्रण कानून' बनाने की मांग की है।

भाजपा के साथ ही अनेक अन्य हिन्दू समूहों ने भी जनसंख्या नियंत्रण कानून बनाने की मांग लंबे समय से की है। देश के कई प्रदेशों, खासकर देश के तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान और वर्तमान बांग्लादेश से सटे पश्चिम बंगाल व असम जैसे प्रदेशों तथा पश्चिमी पाकिस्तान से सटे जम्मू कश्मीर के घाटी क्षेत्र में मुस्लिम जनसंख्या में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है। इससे भाजपा तथा अन्य हिन्दू-समर्थक दलों व संगठनों को आशंका है कि यदि यही स्थिति बनी रही तो भारत में 'जनसंख्या संतुलन' बिगड़ जाएगा। उनको आशंका है कि इससे देश की राजनीति, समाज व अर्थव्यवस्था में 'हिंदू स्पेस' में कमी आएगी।

संक्षेप में कहा जाए तो मायावती के नेतृत्व में बहुजन समाज पार्टी द्वारा एक बार फिर अलग पश्चिमी उत्तर प्रदेश या 'हरित प्रदेश' की मांग के पीछे बहुत कुछ छिपा है। हालांकि, अलग पश्चिमी उत्तर प्रदेश की मांग शुरुआत से बेहतर प्रशासन के लिए की जाती रही है, लेकिन जनता के बजाय इसका संबंध राजनीति से अधिक है।

स्वायत्तता के लिए लद्दाख का संघर्ष

ऐतिहासिक हाशिए और उपेक्षा की पृष्ठभूमि के खिलाफ, स्वायत्तता की ओर लद्दाख की यात्रा में संघर्ष और अथक प्रयास शामिल है।

हरि ओम
(लेखक, जम्मू विवि में संकायाध्यक्ष रहे हैं)

26 अक्टूबर, 1947 को पूर्ववर्ती जम्मू-कश्मीर राज्य के भारत में विलय ने रणनीतिक ट्रांस-हिमालयी लद्दाख क्षेत्र में बौद्ध बहुल लेह जिले को महत्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक झटका दिया, जो दुनिया की छत के रूप में प्रसिद्ध है। और लामाओं की भूमि। इसी तरह, लद्दाख के करील जिले में मुख्य रूप से बौद्ध जांस्कर तहसील को इन परिणामों का खामियाजा भुगतना पड़ा, और अपने समकक्ष, लेह की तुलना में और भी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

1979 में शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में मुस्लिम-बहुल कारगिल जिले की उत्पत्ति का उद्देश्य उनके सह-धर्मवादियों और बौद्धों के बीच कलह को बढ़ावा देना था, जिसका उद्देश्य लद्दाख के लिए स्वायत्तता और केंद्र शासित प्रदेश की स्थिति के लिए बौद्धों की आकांक्षाओं को विफल करना था। इस कदम ने बौद्धों की दुर्दशा को बढ़ा दिया, दो प्राथमिक कारकों के कारण उनके धर्म, संस्कृति, सामाजिक ताने-बाने और जनसांख्यिकीय अखंडता को खतरे में डाल दिया।

सबसे पहले, लगातार कश्मीरी-प्रभुत्व वाले प्रशासनों ने लद्दाख को कश्मीर के उपांग के रूप में देखा, इसकी बौद्ध आबादी की राजनीतिक और आर्थिक आकांक्षाओं की उपेक्षा की। जम्मू प्रांत के समान लद्दाख को भी कश्मीरी शासकों द्वारा एक उपनिवेश के रूप में देखा जाता था, जिससे बौद्धों में हाशिये पर रहने की भावना बनी रहती थी। दूसरे, नई दिल्ली के सत्ता के गलियारों पर कश्मीरी अभिजात वर्ग के हानिकारक प्रभाव ने बौद्धों की आवाज़ को और अधिक हाशिए पर डाल दिया, केंद्रीय अधिकारियों ने लगातार कश्मीरी हितों का पक्ष लिया और लद्दाख की चिंताओं

को खारिज कर दिया। इस प्रणालीगत उपेक्षा के जवाब में, प्रमुख लामा कुशोक बकुला रिनपोछे के कुशल नेतृत्व में, बौद्धों ने सार्थक राजनीतिक प्रतिनिधित्व और स्वायत्तता की मांग करते हुए 1952 में विरोध प्रदर्शन शुरू किया। उनकी उत्कट अपीलों और चेतावनियों के बावजूद, श्रीनगर और नई दिल्ली दोनों ने उनकी शिकायतों को नजरअंदाज कर दिया, जिससे बौद्ध आबादी में निराशा बढ़ गई। अक्टूबर 1989 में असंतोष की पराकाष्ठा भड़क उठी, जिसमें बौद्धों और अधिकारियों के बीच व्यापक विरोध प्रदर्शन और झड़पें हुईं। केंद्र सरकार की मध्यस्थता में 29 अक्टूबर, 1989 के परिणामी त्रिपक्षीय समझौते ने लेह में लद्दाख स्वायत्त पहाड़ी विकास परिषद (एलएएचडीसी) की स्थापना करके अस्थायी रूप से तनाव को कम किया।

हालांकि, इस प्रस्ताव को फारूक अब्दुल्ला सहित कश्मीरी नेताओं के तीव्र विरोध का सामना करना पड़ा, जिन्होंने इसे कश्मीरी आधिपत्य के लिए खतरे के रूप में देखा।

1995 में एलएएचडीसी लेह की स्थापना के बावजूद, कश्मीर-केंद्रित अधिकारियों के निरंतर हस्तक्षेप के कारण बौद्ध असंतुष्ट रहे, जिससे परिषद अप्रभावी हो गई। नतीजतन, उन्होंने अपनी शिकायतों को दूर करने के लिए केंद्रीय शासन को एकमात्र सहारा बताते हुए, लद्दाख को केंद्र शासित प्रदेश का दर्जा और अन्य मांगों की वकालत करते हुए अपना आंदोलन तेज कर दिया।

निर्णायक मोड़ 19 जून, 2018 के बाद आया, जब केंद्र सरकार ने बौद्ध समुदाय को खुश करने के लिए कई उपायों की शुरुआत करते हुए, जम्मू और कश्मीर का सीधा नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया। इनमें लद्दाख विश्वविद्यालय की स्थापना, लद्दाख को संभागीय दर्जा देना और अंतत: केंद्र शासित प्रदेश के दर्जे की लंबे समय से चली आ रही मांग को पूरा करने के लिए लद्दाख को जम्मू-कश्मीर से अलग करना शामिल है।

इसके अतिरिक्त, लद्दाख के विकास को बढ़ावा देने के लिए पर्याप्त बजटीय आवंटन किए गए। इन पहलों ने हाशिए पर मौजूद बौद्ध आबादी की आकांक्षाओं को संबोधित करने में केंद्रीय शासन की प्रभावशीलता को रेखांकित किया। राज्य का दर्जा पाने के बजाय, बौद्धों से एलएएचडीसी लेह को मजबूत करने और अपनी सांस्कृतिक विरासत की रक्षा करने और जनसांख्यिकीय चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए मोदी सरकार के साथ सहयोग करने का आग्रह किया जाता है।

2018 और 2023 के बीच की अवधि लद्दाख के लिए एक परिवर्तनकारी चरण का प्रतीक है, जिसमें केंद्रीय हस्तक्षेप ऐतिहासिक अन्याय के निवारण और अपनी बौद्ध आबादी को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण साबित हुआ।

आप की बात

कांग्रेस का हाल

कांग्रेस के प्रत्याशी ने सूरत लोकसभा सीट के लिए पर्चा भरा किन्तु खामियों के कारण वह रद्द हो गया और भाजपा प्रत्याशी निर्विरोध विजयी घोषित कर दिए गए। वैसे भी आजकल बहुत से कांग्रेसी-कांग्रेस जोड़ो की जगह कांग्रेस छोड़ो के रास्ते पर चल कर दूसरे दलों में भागे ही जा रहे हैं। इससे अनेक सीटों पर कांग्रेस को उम्मीदवार ही नहीं मिल रहे हैं तो कहीं जबरन उम्मीदवारों को टिकट देकर प्रत्याशी बनाया जा रहा है। कांग्रेस की स्थिति पूरे देश में दयनीय होती जा रही है। कहा जाता है कि सूरत में कांग्रेस उम्मीदवार के प्रस्तावकों ने शिकायत कर दी कि उनके कागजों पर हस्ताक्षर फर्जी थे। हालांकि, कांग्रेस ने इसके खिलाफ कोर्ट जाने की बात कही है, लेकिन उसकी हालत किसी से छिपी नहीं है। कांग्रेस पहले किसी लोकसभा चुनाव में 400 सीटों से कम पर चुनाव नहीं लड़ी, पर इस बार वह क्षेत्रीय दलों के दबाव में लगभग 300 सीटों पर ही चुनाव लड़ रही है। लेकिन वह इसे अपनी रणनीति बता रही है। रायबरेली व अमेठी से उम्मीदवार अभी घोषित न करने को भी वह रणनीति बता रही है। लेकिन कांग्रेस की ऐसी रणनीतियां आम जनता तो दूर स्वयं कांग्रेसियों के गले ही उतर नहीं रहीं है। विडंबना है कि कांग्रेस भगवान श्रीराम का नाम भी नहीं ले सकती है।

-शकुंतला महेश नेनावा, इंदौर

शिक्षा-सुधार

भारत में शिक्षा-सुधार की जरूरत लंबे समय से महसूस की जा रही है। सरकारी स्कूलों की स्थिति में सुधार के लिए कई प्रयास किए गए हैंए लेकिन समस्याएं अभी भी बनी हुई हैं। दिल्ली उच्च न्यायालय के अनुसार, सरकारी स्कूलों में अध्यापकों की अनुपस्थिति तथा टूटी हुई मेज-कुर्सियों जैसी समस्याएँ गंभीर हैं। इससे स्कूलों में व्यवस्थागत शिथिलता का पता चलता है। हालांकि, नए सुधारों से कुछ आशा जगती है। नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अध्यापक प्रशिक्षण में सुधार और चार वर्षीय प्रशिक्षण को लागू करने से शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि हो सकती है। सरकारी स्कूलों में छात्र उपस्थिति व नामांकन बढ़ाने के लिए विशेष प्रयास आवश्यक हैं। शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार को उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। साथ ही, स्कूलों में आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित की जानी चाहिए। स्कूलों में छात्र उपस्थिति बढ़ाने के लिए परिवहन व्यवस्था भी सुधारने की जरूरत है। हमें नई शिक्षा नीति के क्रियान्वयन पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित करना चाहिए। आशा है कि शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले सुधारों से आने वाले समय में भारत के युवाओं और पूरे देश की प्रगति के लिए नई संभावनाएँ खुलेंगी।

-अमरजीत कुमार, औरंगाबाद

गरीबी की सजा

भारत में अक्सर लोगों को कहते सुना है कि गरीब होना सबसे बड़ा पाप और अपराध है। गरीब आदमी जन्म से लेकर मृत्यु तक सिर्फ सजा ही भोगता है। दुनिया के सबसे अमीर देश संयुक्त राज्य अमेरिका में बेघरबार होने वालों को कानूनन अपराधी घोषित कर व पकड़ कर जेल में डाल दिया जाता है। अमेरिका का बेघर-विरोधी कानून 48 राज्यों में लागू है। इस कानून के अंतर्गत फुटपाथ पर आवागमन में बाधा डालना, इधर-उधर घूमना, हड़बड़ाहट में घूमना, भीख मांगना, अतिक्रमण करना, डेरा डालना, अनावश्यक रूप से विशेष स्थानों पर लंबे समय तक रहना तथा विशेष क्षेत्रों में बैठना, लेटना या सोना आदि अपराध हैं। क्या गरीब को आराम करने या कहीं पर बैठ कर सुस्ताने का अधिकार तक नहीं है? बेघर लोगों एवं भीख मांगने वालों से इतनी ही नफरत है तो सरकार उनके लिए घर क्यों नहीं बना देती? तथा उनके लिए भोजन की व्ययस्था क्यों नहीं कर देती? अमीरों की शानोशौकत पर बेतहाशा पैसा खर्च करने वाला अमेरिका तथा हथियारों के सबसे बड़े सौदागर के रूप में दुनिया में हर साल हजारों लोगों को मारने का जिम्मेदार अमेरिका अब अपने ही नागरिकों के प्रति क्रूर व्यवहार करने पर आमादा है। अमीरों के सर्वोत्तम खोल-लोकतंत्र का यही यथार्थ है।

-जंग बहादुर सिंह, जमशेदपुर

अमरत्व की इच्छा

सदियों से इंसान की चाह अमर होने की रही है और इसके लिए वह प्रयास भी कर रहा है। उम्र बढ़ाने के लिए कई तरह के प्रयोग निरंतर जारी हैं तथा कई असाध्य रोगों के इलाज खोज लिए गए हैं, मगर अमरत्व पाना अभी मुमकिन नहीं हुआ है। विज्ञान इंसानों की उम्र बढ़ाने में कामयाब हो रहा है और वह इंसानों को अधिक से अधिक शक्तिशाली, बुद्धिमान और दीर्घजीवी बनाने में भी सफल हो रहा है। फिर भी उसकी अमरत्व पाने की लालसा पूरी नहीं हो रही है। वैसे यह लालसा पूरी न हो, यही मानवता के लिए बेहतर होगा। आप कल्पना करें कि अभी रुस, अमेरिका, इजरायल, साउथ अफ्रीका, ईरान, आदि देशों के वर्तमान राष्ट्राध्यक्ष अमर हो जाएं तो दुनिया का क्या हश्र होगा। मृत्यु निश्चित होने के बावजूद इनकी तथा इनके जैसे अनेक लोगों की लालसाएं पूरी नहीं हो रही हैं। यदि ऐसे लोग अमर हो जाएं तो दुनिया को तहस-नहस करके ही दम लेंगे। अमरत्व की इच्छा के बजाय दुनिया को वर्तमान नागरिकों के साथ भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित व सुंदर बनाने की इच्छा सचमुच जीवन वाले पृथ्वी ग्रह को अमर बना देगी।

-विभूति बुपक्या, खाचरोद

पाठक अपनी प्रतिक्रिया ई-मेल से
responsemail.hindipioneer@gmail.com
पर भी भेज सकते हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 17 अंक 58

लंबा है सफर

वोडाफोन आइडिया के 18,000 करोड़ रुपये के फॉलोऑन पब्लिक ऑफर (एफपीओ) ने यह उम्मीद जगा दी है कि नकदी संकट से जूझ रही इस दूरसंचार कंपनी के हालात बदल सकते हैं। एफपीओ सात गुना सबस्क्राइब हुआ और निवेशकों से करीब 90,000 करोड़ रुपये की राशि बोली में हासिल हुई। बीते कुछ वर्षों में धन जुटाने में नाकाम वोडाफोन आइडिया ने आखिरी प्रयास में एफपीओ पेश करने का निर्णय लिया जिसे विदेशी निवेशकों का जबरदस्त समर्थन मिला। सफल एफपीओ वोडाफोन आइडिया में नई जान फूंकने में मददगार साबित हो सकता है लेकिन यह भी संभव है कि इसका सीमित प्रभाव हो। ऐसा इसलिए कि कंपनी के नुकसान और देनदारी का आंकड़ा बहुत बड़ा है। कंपनी पर 31 दिसंबर, 2023 तक करीब 2.15 लाख करोड़ रुपये का कर्ज था। इसमें 1.38 लाख करोड़ रुपये का लंबित स्पेक्ट्रम भुगतान और सरकार के प्रति 69,020 करोड़ रुपये की समायोजित सकल राजस्व देनदारी शामिल थी। इसके अलावा कंपनी पर बैंकों और वित्तीय संस्थानों की 6,050 करोड़ रुपये की देनदारी तथा 1,660 करोड़ रुपये का वैकल्पिक रूप से परिवर्तनीय डिबेंचर शामिल है।

कंपनी के लिए चिंता की और भी वजह हैं। उनमें सबसे बड़ी है उसके ग्राहकों की लगातार कम होती संख्या। कंपनी पिछले कई महीनों से इसमें जूझ रही है। भारतीय दूरसंचार नियामक प्राधिकरण (ट्राई) के ताजा आंकड़े बताते हैं कि जनवरी में वोडाफोन आइडिया के 22.1 करोड़ ग्राहक थे। अगर तुलना करें तो एयरटेल के 38.2 करोड़ और जियो के 46.4 करोड़ ग्राहक थे। वोडाफोन आइडिया को 5जी सेवा प्रदान करने के क्षेत्र में बहुत काम करना है क्योंकि उसके प्रतिद्वंद्वी उससे बहुत आगे हैं। गत सप्ताह एफपीओ की घोषणा के समय वोडाफोन आइडिया प्रबंधन ने विस्तार से बताया कि 5जी सेवाओं की शुरुआत के लिए कंपनी की क्या योजना है। कंपनी का इरादा है कि अगले 24 से 30 महीनों के दौरान अपने राजस्व का 40 फीसदी हिस्सा 5जी सेवाओं से अर्जित करे। परंतु दूरसंचार कंपनी की 5जी नेटवर्क ऑर्डर व्यवस्था उसके राजस्व जुटाने से संबद्ध होगी।

यह स्पष्ट है कि एफपीओ से हासिल हो रही मौजूदा धनराशि इतनी अधिक नहीं होगी कि यह कंपनी 5जी और नेटवर्क विस्तार में भी खर्च कर सके और अपना भारी भरकम कर्ज भी चुका सके। दूरसंचार नकदी की जरूरत वाला क्षेत्र है जहां एक बार धन जुटाकर कंपनी अपनी समस्याओं को हल नहीं कर सकती। प्रवर्तक कंपनियों वोडाफोन पीएलसी और आदित्य बिड़ला समूह ने हाल के समय में मामूली वित्तीय सहायता प्रदान की है और कंपनी को सख्ती बरतते हुए अपने टैरिफ को व्यावहारिक बनाना होगा। मासिक प्रति उपयोगकर्ता औसत राजस्व (एआरपीयू) को इस क्षेत्र और दूरसंचार कंपनियों की सेहत का मानक माना जाता है। न केवल वोडाफोन आइडिया बल्कि समूचे दूरसंचार उद्योग को इसमें इजाफा करना होगा ताकि कारोबार व्यावहारिक बन सके। वोडाफोन आइडिया का मासिक एआरपीयू अभी 145 रुपये प्रति माह है जो जियो के 181.7 रुपये प्रति माह और एयरटेल के 208 रुपये प्रति माह से काफी कम है। समग्र तौर पर देखें तो भारत में दूरसंचार क्षेत्र का औसत एआरपीयू 152.50 रुपये प्रति माह है जो वैश्विक आंकड़ों का एक हिस्सा भर है।

इस परिदृश्य में शुल्क दरों को तार्किक करके यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि देश के दूरसंचार क्षेत्र में दो कंपनियों के दबदबे की स्थिति न बने। केंद्र सरकार वोडाफोन इंडिया में 33 फीसदी के साथ सबसे बड़ी हिस्सेदार (एफपीओ के पहले तक) है। यह स्थिति तब बनी जब फरवरी 2023 में दूरसंचार कंपनी के सकल राजस्व बकाये पर बने ब्याज को शेयरों में तब्दील किया गया। सरकार के पास यह विकल्प भी रहा कि वह बाद में भी कंपनी के बकाया को शेयरों में बदल सके। परंतु दूरसंचार कंपनी को सफल एफपीओ के बाद एक मजबूत कारोबारी मॉडल की भी जरूरत है। सुधार के संकेत बाद में उसे विस्तार के लिए धन जुटाने में भी मदद करेंगे।

बिनय सिन्हा

म्यांमार के हालात और भारत की भूमिका

पड़ोसी देश म्यांमार में छिड़े गृह युद्ध के हालिया रुझान यह बताते हैं कि भारत को वहां की सैन्य शासन विरोधी ताकतों के साथ अपने संपर्क को मजबूत करने की आवश्यकता है। बता रहे हैं शंकर आचार्य

म्यांमार और भारत के बीच करीब 1,600 किलोमीटर की साझा सीमा है। यह पूर्वोत्तर के चार राज्यों मणिपुर, नगालैंड, अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम तक विस्तारित है। परंतु हमें म्यांमार के बारे में ज्यादा बातें सुनने को नहीं मिलती हैं, खासतौर पर 1 फरवरी, 2021 के बाद से जब मिन अंग हलाइंग के नेतृत्व वाली म्यांमार की सेना यानी तमरॉ ने लोकतांत्रिक रूप से चुनी गई आंग सान सू ची के नेतृत्व वाली नैशनल लीग फॉर डेमोक्रेसी (एनएलडी) की सरकार का तख्ता पलट दिया था। तब से वहां क्या हो रहा है? लेकिन उसके पहले हमें म्यांमार के सरकारी इतिहास पर एक नजर डालनी चाहिए।

आजादी के बाद करीब 15 वर्ष के लोकतांत्रिक शासन के बाद सेना ने देश में शासन संभाल लिया। इसकी शुरुआत 1962 में जनरल ने विन के तख्तापलट से हुई। सन 1988 में देश के शहरी क्षेत्रों में छात्र-छात्राओं के नेतृत्व में विद्रोह भड़का और संयोग से उसी समय आंग सान सू ची ब्रिटेन से अपनी बीमार मां को देखने स्वदेश पहुंची। उनके नेतृत्व में एनएलडी का जन्म हुआ। खूनी दमन जारी रहा और इस बीच 1990 में सेना के जनरलों ने चुनाव की इजाजत दी और तमाम विपरीत हालात के बीच एनएलडी ने चुनावों में स्पष्ट जीत हासिल की। इस बीच सू ची को घर में नजरबंद कर दिया गया था। जल्दी ही चुनाव नतीजों को अवैध घोषित कर दिया गया और सू ची अगले तकरीबन 20 वर्षों तक नजरबंद बनी रहीं। समय के साथ पश्चिमी आर्थिक प्रतिबंधों और म्यांमार के दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य देशों से पिछड़ते जाने से सेना मजबूर हो गई और 2008 में उसने नया संविधान बनाया जिसमें सरकार में सेना की भूमिका के प्रति गहरा झुकाव था। 2010 में चुनाव हुए। सू ची को पुनः नजरबंद कर दिया गया और एनएलडी ने इन चुनावों का बहिष्कार किया। सैन्य सरकार के दल को जीत हासिल हुई और उसने 2015 तक शासन किया। इस दौरान उसने अर्थव्यवस्था को आंतरिक और बाहरी स्तर पर काफी हद तक खोलने का प्रयास किया।

2011 में सू ची को रिहा कर दिया गया। एनएलडी ने 2015 के चुनावों में हिस्सा लिया और तमाम हालात और अनुमानों को परे हटाते हुए पार्टी ने संसद के दोनों सदनों तथा अधिकांश राज्य विधानसभाओं में भारी जीत हासिल की। दुनिया में ऐसा दूसरा उदाहरण नहीं है जहां 25 वर्ष बाद एक ही दल और नेता को इतनी बड़ी जीत हासिल हुई हो। एनएलडी ने सरकार जरूर बनाई लेकिन गृह मामलों, रक्षा तथा सीमा संबंधी मामलों के अहम मंत्रालय 2008 के संविधान के मुताबिक सेना के पास रहे। प्रभावी तौर पर देखें तो सू ची और एनएलडी को जबरदस्त चुनावी जीत मिलने के बाद भी अगले पांच साल तक सेना के साझेदार के रूप में ही शासन चलाना था। यह एक अहम तथ्य है जिसकी अक्सर अनदेखी कर दी जाती है। नवंबर 2020 के सबसे ताजा चुनावों में सू ची और एनएलडी को लगातार तीसरी बार जीत मिली। बहरहाल धैर्य गंवा चुके सैन्य नेताओं और सेवानिवृत्ति के करीब पहुंच चुके उनके कमांडिंग जनरल मिन अंग हलाइंग ने दोबारा गद्दी पर वापस आने का निर्णय लिया और फरवरी 2021 में वहां एक बार फिर तख्तापलट हुआ। चुनावों को निरस्त करते हुए एनएलडी को गैरकानूनी करार दे दिया गया। पार्टी के कई नेताओं को जेल भेज दिया गया या उनकी जान ले ली गई। सू ची को कई मनगढ़ंत आरोपों में दोषी ठहराया गया करीब 30 साल की कैद की सजा के लिए जेल में डाल दिया गया।

फरवरी 2021 के सैन्य तख्तापलट के बाद देश भर में बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन आरंभ हो गया खासकर शहरी इलाकों में। सेना ने इस पर बर्बर प्रतिक्रिया दी। हजारों लोग मारे गए, 20,000 से अधिक लोग जेल में बंद कर दिए गए। हवाई हमले भी किए गए और करीब 10 लाख से अधिक लोगों को अपना घर छोड़ना पड़ा। हजारों लोगों ने पड़ोसी देशों खासकर थाईलैंड में शरण ली। अप्रैल तक एक ढीलीढाली निर्वासित राष्ट्रीय एकता सरकार का गठन किया गया। इसमें एनएलडी के पुराने सांसद, अन्य जातीय समूहों के प्रतिनिधि और कई अल्पसंख्यक दलों के सदस्य शामिल थे। मई में इस सरकार ने पीपुल्स डिफेंस फोर्स के गठन की घोषणा की। राष्ट्रीय एकता सरकार और पीपुल्स डिफेंस फोर्स की शुरुआत लड़खड़ाहट भरी रही लेकिन समय के साथ उसे लोकप्रियता और मजबूती दोनों हासिल हुए। उसने जातीय उपद्रवी साझेदारों को साथ लिया। उदाहरण के लिए अराकान आर्मी, कचिन इंडिपेंडेंस आर्मी, शान स्टेट आमी और करेन नैशनल लिबरेशन आर्मी आदि। धीरे-धीरे म्यांमार गृह युद्ध में घिर गया। बीते छह से आठ महीनों में माहौल तमरॉ के खिलाफ हो गया। हालांकि सरकार की सैन्य शक्ति को कम करके नहीं आंका जा सकता है, खासकर विदेशी सैन्य आपूर्ति को देखते हुए। गत अक्टूबर में 'थ्री ब्रदरहुड अलायंस' नामक क्षेत्रीय बलों के गठजोड़ ने तमरॉ के सैकड़ों लोगों की हत्या कर दी और बड़ी तादाद में लोगों को बंदी बना लिया। हालांकि चीन की मध्यस्थता से जनवरी 2024 में कुछ हद तक शांति स्थापित हुई लेकिन जातीय समूहों और पीपुल्स डेमोक्रेटिक फोर्स को देश भर में जीत मिलती रही। सैन्य शासन पर ड्रोन हमले बढ़े। तमरॉ ने इलाके खाली किए। फरवरी के आखिर में सैन्य शासन ने युवाओं की अनिवार्य भर्ती आरंभ की जिससे बचने के लिए बड़ी तादाद में युवा म्यांमार के लोग पड़ोसी देशों की ओर भागे। इस सप्ताह के आरंभ में तमरॉ ने करेन प्रांत के अहम कारोबारी केंद्र म्यावड्डी पर नियंत्रण गंवा दिया। यह थाईलैंड की सीमा के निकट है।

देश के दूसरी ओर कुछ दिन पहले भारत सरकार ने हालात की गंभीरता को पहचाना और सित्तवे में अपने वाणिज्य दूतावास को खाली करा लिया। जानकार विश्लेषकों के मुताबिक भारत तथा राष्ट्रीय एकता सरकार तथा अन्य सैन्य शासन विरोधी दलों के बीच सीमित संपर्क है। ऐसा इसलिए कि लंबे समय तक यह लगता रहा कि सीमा पार के उपद्रवी तत्त्वों के प्रबंधन के लिए ऐसा करना जरूरी था। परंतु म्यांमार में गृह युद्ध के हालिया हालात को देखते हुए सैन्य शासन विरोधी शक्तियों के साथ रिश्ते मजबूत करने की अहमियत बढ़ रही है। पूर्व विदेश सचिवों कंवल सिब्बल और श्याम सरन ने इसी पक्ष में दलील दी है। उन्होंने कहा है कि म्यांमार विवाद के दोनों पक्षों के साथ चीन की संबद्धता को देखते हुए इसका प्रतिकार करना आवश्यक है। किसे पता हो सकता है, ऐसा होना शुरू भी हो गया हो।

(लेखक इक्रियर के मानद प्राध्यापक और भारत सरकार के पूर्व मुख्य आर्थिक सलाहकार हैं। लेख में व्यक्त विचार निजी हैं)

ईरान-इजरायल का टकराव खतरनाक मोड़ पर

इजरायल और ईरान में तनाव बढ़ने के बाद दोनों देशों का लंबे समय से चला आ रहा शत्रुतापूर्ण संबंध एक खतरनाक मोड़ पर पहुंच गया है। वर्ष 1990 में पहले खाड़ी युद्ध में सद्दाम हुसैन के शासनकाल में इराक की सेना ने इजरायल पर स्कड मिसाइलों से हमला किया था। मगर कुछ दिन पहले इजरायल ने जिस बड़े हमले का सामना किया वह चौंकाने वाला था। पिछले कुछ दशकों में इजरायल पर इतना भीषण हमला नहीं हुआ था। उसकी मिसाइल रक्षा प्रणाली ने ईरान द्वारा प्रक्षेपित 331 मिसाइलों को हवा में ही नष्ट कर दिया। इसमें कोई दो राय नहीं कि इन मिसाइलों को नाकाम करने में इजरायल को अमेरिका और ब्रिटेन का पूरा सहयोग मिला। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि ईरान को इजरायल पर इतना बड़ा हमला करने पर विवश क्यों होना पड़ा? इस घटना से कुछ सप्ताह पहले इजरायल ने दमिश्क में ईरान के दूतावास पर हवाई हमला किया था। इस हमले में ईरान रिवोल्यूशनरी गार्ड कॉर्प (आईआरजीसी) के दो शीर्ष कमांडर मारे गए थे। यह घटना ईरान और इजरायल के बीच ताजा तनाव का तात्कालिक कारण था। ईरान ने इजरायल पर खैबर शेकन एवं एमाड बैलिस्टिक और पावेह क्रूज मिसाइलों से हमले किए थे। ईरान ने हमले में शहीद 131 और 136 ड्रोन का भी इस्तेमाल किया। रूस की सेना यूक्रेन में शहीद 136 यूएवी का इस्तेमाल कर रही है।

ईरान का तर्क है कि इजरायल ने उसके कूटनीतिक मिशन पर हमला कर सभी सीमाएं लांघ ली हैं। ईरान अपने कूटनीतिक मिशन को संप्रभु क्षेत्र मानता है। इजरायल पर ईरान का जवाबी हमला इस मायने में पूरी तरह जवाबी नहीं कहा जा सकता कि इजरायल ने पायलट चालित लड़ाकू विमानों का इस्तेमाल किया था जबकि ईरान ने मानवरहित हवाई वाहन (यूएवी) और मिसाइलों से हमला किया था। ईरान के पास मानव चालित हवाई मारक क्षमता की कमी है मगर उसके पास यूएवी, बैलिस्टिक एवं क्रूज मिसाइल जरूर हैं। इसी वजह से ईरान ने इजरायल पर इनका इस्तेमाल किया। ईरान ने जितनी बड़ी तादाद में मिसाइलों और ड्रोन का इस्तेमाल किया वह भी इजरायल के शुरुआती हमले के बराबर नहीं ठहरता। मगर ईरान का तर्क है कि उसके दूतावास पर हमले का जो जवाब दिया वह उपयुक्त और अपेक्षित था। ईरान का हमला बहुत सफल नहीं माना जा सकता क्योंकि उसके अधिक से अधिक पांच मिसाइल ही इजरायल के सुरक्षा तंत्र को भेद पाए। मगर इन बातों से इतर ईरान के नजरिये से यह पर्याप्त था क्योंकि उसने केवल मकसद से इस हमले को अंजाम दिया था। ईरान ने इजरायल को यह संदेश भेजने की कोशिश की कि उसे उसके अधिक महत्त्व एवं सामरिक रूप से संवेदनशील ठिकानों पर हमले करने से बचना चाहिए। वास्तव में पांच बैलिस्टिक मिसाइल इजरायल का सुरक्षा चक्र भेदने में सक्षम थे और वे नेगेव क्षेत्र में नेवातिम एयरबेस तक पहुंच गए जिससे इसे मामूली नुकसान पहुंचा। इजरायल को चेतावनी देना ईरान का मुख्य मकसद था। मगर इन सब के बावजूद हम ईरान द्वारा किए गए मिसाइल हमले की 'विफलता' से क्या निष्कर्ष निकाल सकते हैं? ऐसा हो सकता है कि ईरान का मिसाइल एवं ड्रोन हमला इसलिए असफल रहा कि यह एक सोची-समझी रणनीति के तहत किया गया था। ईरान ने पहले ही कह दिया था कि वह जवाबी कार्रवाई करेगा और सार्वजनिक तौर पर यह भी बता दिया कि वह किस तरह इस हमले को अंजाम दे सकता है। इस तरह, ईरान ने जान-बूझकर इजरायल और अमेरिका को पहले से सतर्क होने का मौका दे दिया।

हर्ष वी पंत और कार्तिक बोम्माकांति

इसका नतीजा यह हुआ कि इजरायल और उसके सहयोगी देशों- अमेरिका और ब्रिटेन- को ईरान के मिसाइल एवं ड्रोन हमले से निपटने की तैयारी करने का पर्याप्त समय मिल गया। हमले को लेकर सभी बातें सार्वजनिक कर ईरान अपने धुर विरोधी को सुरक्षा इंतजाम करने का पर्याप्त समय दे रहा था और साथ ही यह भी सुनिश्चित कर रहा था कि उसे इजरायल एवं सहयोगी देशों से किसी बड़े हमले का सामना नहीं करना पड़े। मगर तब भी जिस ताकत के साथ ईरान ने इजरायल पर मिसाइल छोड़े उसे ऐसा नहीं लगता कि यह महज रणनीतिक कदम तक सीमित रह सकता था। अगर ईरान की कुछ मिसाइलों से इजरायल में कोई बड़ा नुकसान हो जाता तो फिर तनाव अपने चरम पर पहुंच जाता। ईरान ने जो किया उससे इतना तो साफ है कि उसने जोखिम उठाने का बड़ा साहस दिखाया है और ऐसा करने में उसने आत्मविश्वास का भी परिचय दिया है, जो पहले नहीं दिखा था। मगर तेहरान ने यह कहते हुए तनाव कम करने का इशारा भी दे दिया कि उसके हमले ने अपने उद्देश्य पूरा कर लिया है।

जो भी हो, इजरायल एवं उसकी सुरक्षा प्रणाली (एयर डिफेंस) कारगर रही और उसने ईरान से प्रक्षेपित 99 प्रतिशत मिसाइलों एवं ड्रोन को ऊपर में ही नष्ट कर दिया। इजरायल की बहु-स्तरीय एयर डिफेंस सिस्टम में एरो बैलिस्टिक मिसाइल डिफेंस (बीएमडी) प्रणाली शामिल है जिसे उसने अमेरिका के साथ संयुक्त रूप से विकसित किया है। बीएमडी लंबी दूरी की बैलिस्टिक मिसाइलों को हवा में ही मार गिराने की क्षमता रखता है। इजरायल के पास डेविड्स स्लिंग प्रणाली भी है जो मध्यम दूरी की मिसाइलों को लक्ष्य तक पहुंचने से पहले हवा में ही नष्ट कर देती है। इसके साथ ही अमेरिका का पैट्रियट बैटरी सिस्टम भी इजरायल की सुरक्षा को धार देती है। इजरायल आयरन डोम का भी इस्तेमाल करता है जो छोटी दूरी के रॉकेट को लक्ष्य तक पहुंचने से पहले ही खत्म कर देता है। इजरायल के आयरन बीम सिस्टम ने भी ईरान से दागी गई मिसाइलों को नाकाम करने में भूमिका निभाई होगी। यह इजरायल के पास मौजूद अन्य प्रणालियों से थोड़ी सस्ती मानी जाती है मगर इसे लेकर विरोधाभासी खबरें आ रही हैं कि यह उपयोग में है या नहीं।

इजरायल पर ईरान के मिसाइल बरसने के बाद पश्चिम एशिया में रणनीतिक स्थिरता को लेकर जगी उम्मीदों पर फिर खतरे के बादल मंडराने लगे हैं। अब जो नई स्थिति पैदा हुई है वह ईरान और इजरायल के बीच टकराव के नया रूप लेने का स्पष्ट संकेत दे रहा है। ईरान और इजरायल दोनों एक दूसरे के खिलाफ साइबरस्पेस (डिजिटल वातावरण) सहित दूसरे मोर्चों पर हमले कर सकते हैं। इन दोनों देशों के कटु संबंधों का असर इस क्षेत्र के दूसरे देशों पर भी होगा। परमाणु हथियारों की होड़ शुरू होने का खतरा भी मंडराने लगा है।

(हर्ष पंत और कार्तिक बोम्माकांति ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन, नई दिल्ली में क्रमशः उपाध्यक्ष, अध्ययन एवं विदेश नीति और सीनियर फेलो, राष्ट्रीय सुरक्षा एवं रक्षा हैं)

आपका पक्ष

चुनाव में जाति और धर्म की नहीं हो भूमिका

लोक सभा चुनाव में राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों का चयन उनकी जाति के आधार पर किया गया प्रतीत होता है। आम चुनाव में सैकड़ों जातियों के उम्मीदवार मैदान में हैं। चुनाव को धार्मिक भावना भी प्रभावित कर रही है। चुनाव प्रचार में राजनीतिक दलों द्वारा जारी घोषणा पत्र की भूमिका मुख्य होनी चाहिए। दलों की विचारधारा मतदाताओं के समक्ष होगी, तो मतदाता मतदान करते समय विचारधारा का ध्यान रखेंगे। ऐसा होने से राजनीतिक दलों की संख्या भी स्वतः सीमित हो जाएगी। संख्या की यह भीड़ लोकतंत्र के आधार को ही कमजोर कर सकती है। इस पर नियंत्रण करना आवश्यक है। स्वस्थ लोकतंत्र के लिए चुनाव प्रणाली में सुधार करने का समय आ गया है। चुनाव में जाति और धर्म की भूमिका नहीं हो। नेताओं का संकुचित व्यवहार और व्यक्तिगत छींटाकशी का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। चुनाव

चुनाव प्रणाली लोकतंत्र का आधार स्तंभ है जिसमें धर्म, जाति और अपराधियों की भूमिका के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए

मतदाताओं को शिक्षित करने का अवसर प्रदान करता है। मतदाताओं के सामने उम्मीदवार के चयन का आधार राजनीतिक दल के कार्य, उम्मीदवार के सेवाकार्य और उनकी योग्यता का होना चाहिए। चुनाव से लोकतंत्र को मजबूती मिलनी चाहिए। निर्वाचित होने के बाद सदन में सदस्य विचारधारा के आधार पर व्यवहार करें। संसदीय प्रणाली जनता के लिए है। सदन का कामकाज बाधित होना चुनाव प्रणाली की सबसे बड़ी कमजोरी है। चुनाव प्रणाली तो लोकतंत्र का आधार स्तंभ है जिसमें धर्म, जाति और अपराधियों की भूमिका के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए।

निर्मलकुमार पाटोदी, इंदौर

देश के 50 फीसदी जिलों में आ सकता है जल संकट

दुनिया की सबसे बड़ी आबादी वाले देश भारत में आगे चलकर गंभीर जल संकट पैदा होने वाला है। देश के कृषि क्षेत्र में जल प्रबंधन को बढ़ावा देने में जुड़ी एक रिपोर्ट में दावा किया गया है कि 2050 तक देश के 50 फीसदी से ज्यादा जिलों में पानी का गंभीर संकट हो सकता है। इस रिपोर्ट में दावा किया गया है कि 2050 तक देश में प्रति व्यक्ति जल की मांग में 30 फीसदी की बढ़ोतरी होने की संभावना है, जबकि देश की बढ़ती आबादी और जल संसाधनों की कमी के चलते प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता में 15 फीसदी की कमी आ सकती है। पानी की बढ़ती मांग और आपूर्ति में कमी के चलते प्रकृति का संतुलन बिगड़ने की संभावना है। इसी कारण 2050 तक देश के 50 फीसदी जिलों में गंभीर जल संकट हो सकता है। अभी भी 75 फीसदी भारतीयों को आज के समय में भी पर्याप्त पानी नहीं मिल पा रहा है। देश में कृषि क्षेत्र में सबसे ज्यादा पानी इस्तेमाल होता है। इसके बाद उद्योगों में भी काफी पानी का इस्तेमाल होता है। हमारी सरकारों को एवं स्वयं जनता को भी हर साल बारिश के पानी को सहेजने की जरूरत है। इसके लिए हमें ज्यादा से ज्यादा नदी, तालाब के पानी को संचय करने की ओर ध्यान देना चाहिए। इसके अलावा हर साल बेवजह बहने वाले पानी का भी संग्रह करने की ज्यादा से ज्यादा जरूरत है।

मनमोहन राजावतराज, शाजापुर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिज़नेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।

देश-दुनिया

फोटो - पीटीआई

जम्मू-कश्मीर के भद्रवाह क्षेत्र स्थित कोर के युद्ध प्रशिक्षण स्कूल में 146 महिलाओं सहित कुल 1,114 पुलिस उप-निरीक्षक (पीएसआई) छापामार युद्ध का प्रशिक्षण ले रहे हैं। सेना के कमांडर लेफ्टिनेंट जनरल एम.वी. सुचिन्द्र कुमार ने मंगलवार को पुलिस अधिकारियों के आतंकवाद-रोधी प्रशिक्षण की समीक्षा की।

मसालों पर सवाल

भारतीय मसाला कंपनियों पर फिर सवाल का उठना दुखद और चिंताजनक है। सिंगापुर और हांगकांग में कुछ भारतीय मसालों को प्रतिबंधित किया गया है, जिससे भारत में हलचल तेज हो गई है। भारत दुनिया का सबसे बड़ा मसाला उत्पादक, उपभोक्ता व निर्यातक है और भारतीय मसालों पर किसी तरह की आपत्ति से साख पर असर पड़ सकता है। अतः भारत सरकार ने उचित ही सक्रियता दिखाते हुए सिंगापुर और हांगकांग के खाद्य सुरक्षा नियामकों से विवरण मांगा है। वाणिज्य मंत्रालय ने इन दोनों देशों में स्थित भारतीय दूतावासों को इस मामले पर विस्तृत रिपोर्ट भेजने का निर्देश दिया है। सरकार अपने स्तर पर भी जांच कर रही है और निशाने पर आई भारतीय कंपनियों से भी पूरा विवरण मांगा गया है। इन देशों से मसालों को लेकर पहले से शिकायतें आ रही थीं, पर नौबत यहां तक कैसे पहुंची कि प्रतिबंध लगाने की जरूरत पड़ गई? खाद्य उत्पाद के मामले में कंपनियां अक्सर अपने स्तर पर भी शिकायतों का निपटारा करती रही हैं और इन मसाला कंपनियों ने ऐसी क्या लापरवाही बरती कि प्रतिबंध लग गया?

शुरुआती शिकायतों या चर्चा से पता चलता है कि सवालों के घेरे में आए उत्पादों में कथित तौर पर स्वीकार्य सीमा से अधिक कीटनाशक एथिलीन ऑक्साइड होने के चलते प्रतिबंध लगाया गया है। क्या मसालों की फसल में कीटनाशकों का उपयोग बढ़ गया है? क्या इन कंपनियों ने ज्यादा उत्पादन या मुनाफा लेने के लिए गुणवत्ता से समझौता कर रखा है? जाहिर है, कंपनियों के पास ज्यादा जानकारी होगी, अतः इनको अपना जवाब जरूर दाखिल करना चाहिए और वह जवाब सार्वजनिक भी होना चाहिए, ताकि तमाम मसाला उत्पादक आगे से सावधानी बरत सकें। ज्यादा आधिकारिक जानकारी सिंगापुर और हांगकांग से मिलेगी। सरकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि किसी भी भारतीय कंपनी या उसके उत्पाद को अनावश्यक रूप से निशाने पर न लिया जाए। यह देखा जा रहा है कि दुनिया में जैसे-जैसे भारतीय उत्पादों की मांग बढ़ रही है, वैसे-वैसे उनके प्रति शिकायतों में भी इजाफा हो रहा है। ध्यान रहे, जब दुनिया भारत को दवा उत्पादक देश के रूप में जानने लगी, तब कई दवाओं पर कुछ देशों में उंगली उठाई गई। यह स्वाभाविक भी है कि भारतीय उत्पादों को अपना पांव जमाए रखने के लिए अतिरिक्त मेहनत करने की जरूरत पड़ेगी। हमें गौर करना चाहिए, चीनी उत्पादों की गुणवत्ता आम तौर पर कमतर मानी जाती है, पर चीन दुनिया को सर्वाधिक चीजें बनाकर देता है। मतलब, शिकायतें हरेक व्यवसाय का एक पहलू हैं, उनका समाधान करते हुए अपनी उपयोगिता को बनाए रखना होगा।

बाहर से आई शिकायत सही नहीं है। भारत में बन और बिक रहे तमाम खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता को वैश्विक मानकों के अनुरूप सुनिश्चित किया जाए।

यह समय उदास या हताश होने का नहीं है, बल्कि अपनी कमियों से सीखकर आगे बढ़ने का समय है। सवाल है, क्या मसालों को एथिलीन ऑक्साइड या अन्य हानिकारक रसायनों से बचाया जा सकता है? कृषि के अनेक उत्पादों में अनावश्यक तत्व पाए जा रहे हैं। स्वयं कंपनियां ही उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग को बढ़ावा दे रही हैं। अतः अब समय आ गया है, जब भारत में बिक रहे तमाम उत्पादों की गुणवत्ता सुनिश्चित की जाए। किसी चीज के अभाव या व्यवसाय के नाम पर गुणवत्ता में ढील नहीं होनी चाहिए। मिलावट को भी कतई मंजूर नहीं करना चाहिए। खाद्य पदार्थों के आवश्यक मानकों का पुनर्निर्धारण अब और जरूरी हो गया है, ताकि भारत एक ज्यादा विश्वसनीय उत्पादक देश के रूप में अपनी पहचान कायम रखे।

समाज का स्याह और चमकीला पहलू

यहां स्कैन करें

जयंती रंगनाथन | कार्यकारी संपादक, हिन्दुस्तान

पंजाबी लोक गायक अमर सिंह चमकीला के बहाने सही मुद्दे पर चर्चा का समय आ गया है। यह तय करना होगा कि हमारे लिए जरूरी क्या है और हमारी सीमाएं क्या होनी चाहिए?

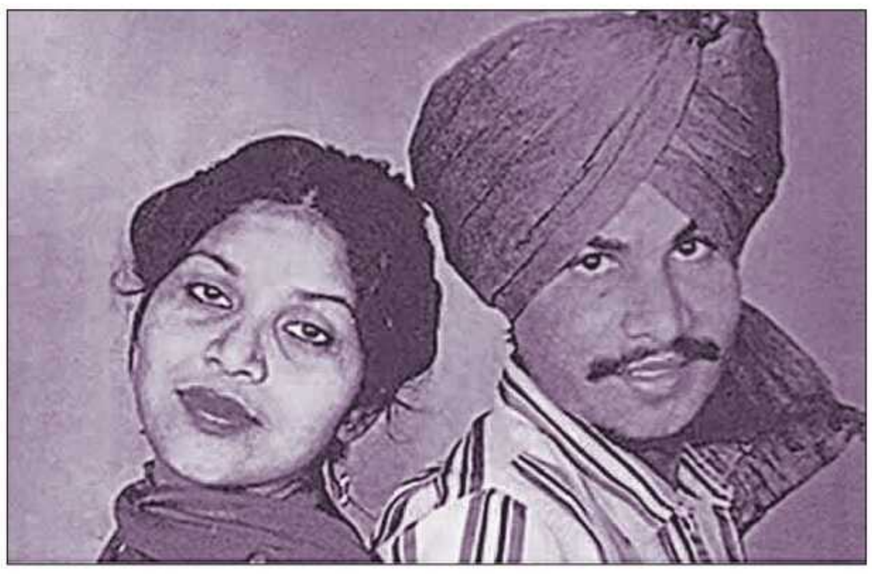

एक चरित्र 'चमकीला' की इधर बहुत चर्चा है। क्या एक 'चमकीला' हम सबके भीतर रहता है? सालों पहले मुंबई में एक लावणी-प्रस्तुति के दौरान मेरे एक मित्र मराठी गीत के बोल मुझे हिंदी में अनुवाद करके बता रहे थे। कह रहे थे कि ये प्रसिद्ध मराठी लोकगीत है। उन्होंने बचपन में मोहल्ले की औरतों को गाते सुना था- *अत्तराचा फाया तुम्ही मला आण राया/ विरह्याचे ऊन बाई/ देह तापवून जाई/ धरा तुम्ही माझ्यावरी/ चंदनाची छाया।* मतलब - इत्र के फाहे तुम मेरे लिए ले आना, बाहर की आग से ज्यादा मेरे अंदर है आग। तुम अपनी चंदन सी छाया मुझे ओढ़ा देना।

पिछले सप्ताह ओटीटी पर पंजाब के लोकप्रिय लोक गायक अमर सिंह चमकीला की जिंदगी पर बनी फिल्म देखते हुए मुझे उस लावणी गीत की बेतहाशा याद आई। चमकीला पंजाबी में ऐसे ही गाने लिखते और गाते थे। वह कहते थे, मैंने बचपन में यही सब देखा है। गाने के बोल उन्होंने अपने आसपास की जिंदगी से उठाए। ऐसी जिंदगी, जो गांव-देहात और कस्बों में आम लोग जीते थे। 1960 में पंजाब के एक छोटे से गांव दुगरी के दलित सिख परिवार में जन्मे धन्नी सिंह का बस एक छोटा सपना था इलेक्ट्रिशियन बनने का। धन्नी सिंह को तुंबी बजाने का शौक था। लुधियाना के एक कपड़ा मिल में काम करते हुए धन्नी को लगा कि उन्हें अपने मन का कुछ करना चाहिए। वह अपने मन से गीत बनाने लगे। ऐसे बोल, जो उस समय पसंद किए जाते थे। उन बोलों में खिलंदड़ापन भी था, बदमाशी, छेड़छाड़ भी थी और प्रेम व अश्लीलता भी।

रातोंरात अमर सिंह चमकीला पंजाब का सितारा बन गए थे। उनके लिए एक खिताब भी गढ़ा गया- पंजाब का एल्विस प्रेस्ली। चमकीला को सुनने गांव-देहात की महिलाएं भी आती थीं, जो उनको सुनने के लिए घरों की छतों पर जम जाती थीं। 1980 के दशक में उनके गीतों के कैसेट पंजाब में रिकॉर्ड तोड़ बिकते थे। लेखक-निर्देशक इम्तियाज अली ने अमर सिंह चमकीला की भूमिका में पंजाब व बॉलीवुड के एक चिर-परिचित चेहरे दिलजीत दोसांझ को लिया है। यह फिल्म एक दौर का दस्तावेज भर नहीं है। हालांकि, फिल्म में चमकीला की जाति को लेकर न्यूनतम जिक्र हुआ है, लेकिन उनके निधन के 36 साल बाद आज भी यू-ट्यूब और दूसरे चैनलों पर उनके एक करोड़ से अधिक श्रोता हैं।

प्रसिद्ध संगीतज्ञ और लेखक गिब स्क्रेफलर ने अपनी किताब में चमकीला और अमरजोत को 'कमर्शियल फोक गायक' कहा है। उन्होंने लिखा है, उनका मकसद लोगों का मनोरंजन करना था। कोई अचरज नहीं, चमकीला पर फिल्म आने के बाद अचानक गूगल, यू-ट्यूब, स्पॉटीफाई और अन्य सोशल मीडिया में लोग उनके बारे में जानने को उत्सुक हो गए हैं। एक लोकगायक बड़े सामाजिक विमर्श की वजह बन गया है। प्रश्न यह है कि क्या चमकीला आज भी प्रासंगिक हैं? क्या उन पर जो आरोप चार दशक पहले लगे थे, वे सही थे? क्या फिल्म बनाकर एक 'अश्लील' गायक को महिमामंडित किया जा रहा है?

वैसे, अश्लीलता की परिभाषा बहुत महीन है। गौर कीजिए, हमारे देश की नाना लोक संस्कृतियों में द्विअर्थी गाने सदियों से गुंथे हुए हैं। उत्तर से दक्षिण तक, पूरब से पश्चिम तक। जब यह सब शुरू हुआ होगा, तब मनोरंजन और प्रहसन के लिए कोई आधुनिक माध्यम नहीं था। सामाजिक परिवेश भी अलग था। त्योहारों और मेल-मिलाप के दौरान मस्ती के माहौल में कुछ रियायतें ले ली जाती थीं। प्रेम, यौनिक ठिठोली, छेड़छाड़ और वर्जित विषयों पर चुटकियां लेना आम बात थी।

अगर आप देखें, तो शादी-ब्याह में गाली वाले प्रहसन, गीत, महाराष्ट्र में लावणी, हिमाचल की सीमा के आसपास मनाया जाने वाला पर्व होलाच, औरंगाबाद का देव उत्सव, होली में फगुआ के दौरान वही पुरानी परंपरा और लोक गाने देखने-सुनने को मिलते रहे हैं। भोजपुरी, मगही, बुंदेली और मैथिली के लोकगीतों में भी मानव भावनाओं का अपेक्षाकृत स्याह, मगर चमकीला-सा पहलू बार-बार उभर आता है। ऐसे गीतों का हमारे समाजों में हमेशा से विशेष स्थान रहा है। ऐसे गीत गुजरात में भी गाए जाते थे और कन्नड़ में भी। दुनिया के मशहूर लेखकों में शुमार सआदत हसन मंटो और इस्मत चुगताई पर सालों तक अश्लील लेखन का तमगा लगा रहा और उन्हें अदालतों में भी घसीटा गया। मुख्यधारा के साहित्य से भी कभी अश्लीलता को दूर नहीं किया जा सका, अक्सर विमर्श को इस दिशा में मोड़ दिया गया कि अश्लीलता देखने या सुनने वाले की निगाह या मन में है। यह तर्क तो और भी पुराना है कि लोग सुनते हैं, इसलिए ऐसे गीत बनते हैं। दुनिया का शायद ही कोई ऐसा कोना या समाज होगा, जहां थोड़ी मात्रा में रचनात्मक अश्लीलता न होगी।

तमिल फिल्मों के शीर्ष निर्देशक मणिरत्नम ने भी तकरीबन अपनी हर फिल्म में एक द्विअर्थी और भदेस गीतों का इस्तेमाल किया है। *रोजा* फिल्म के गीत *रुक्मिणी, शादी के बाद क्या-क्या हुआ* गीत के संदर्भ में उन्होंने अपने एक इंटरव्यू में कहा था, 'मैंने बचपन से यही देखा है। मोहल्ले में किसी की भी शादी हो, हर कोई आनंद में डूबने लगता है, संवाद की शैली बदलने लगती है, बड़े-बूढ़ों को छेड़ना, ढके-छिपे शब्दों में यौन संबंधों की बातें करना, यह सब बहुत सामान्य हो जाता है। लगभग सबको इसमें मजा आता है। हम इसे केवल अश्लील कहकर दबा नहीं सकते।'

यह सही है कि अश्लील और श्लील के बीच का सूत भर का फर्क सालों में मिटता चला गया है। इसके पीछे कई वजहें रही हैं। तेजी से बदलता हमारा समाज, शिक्षा, जीवनशैली और सोच। गांव अब गांव नहीं रह गए। हर कहीं एक शहर घुस आया है और शहरों की लंपटता व लिप्सा के आगे कोई टिक नहीं पाया। कोई सीमा नहीं रह गई। कोई सेंसरशिप नहीं रह गया। न सोच में, न विचार में। सवाल यह भी उठता है कि अश्लीलता की आड़ में अनेक युवा मनमानी करते हैं। समाज में लड़कियां सुरक्षित नहीं हैं, क्योंकि अश्लील गीत उन पर चोट करते हैं। रही-सही कसर स्मार्टफोन ने पूरी कर दी है। अश्लील रील व फिल्मों की बाढ़ आ गई है।

बेशक, चमकीला के बहाने सही मुद्दे पर चर्चा का समय आ गया है। यह तय करना होगा कि हमारे लिए जरूरी क्या है और हमारी सीमाएं क्या होनी चाहिए?

ताकि हमारे शहरों में भी सबको हासिल हो जाए अपना घर

यहां स्कैन करें

विद्या महांबारे | प्रोफेसर, अर्थशास्त्र, जीएलआईएम

संयुक्त राष्ट्र की 2019 की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में महज तीन प्रतिशत भूमि शहरों के हिस्से में आई है और ये अर्थव्यवस्था में लगभग 60 प्रतिशत का योगदान करते हैं। देश में किफायती व गुणवत्तापूर्ण आवास की जरूरत को ध्यान में रखते हुए सरकार ने दिसंबर 2024 तक सभी को आवास मुहैया कराने के लिए जून 2015 में प्रधानमंत्री आवास योजना-शहरी (पीएमएवाई-यू) की शुरुआत की थी। योजना के तहत स्वीकृत करीब 1.17 करोड़ घरों में से लगभग 82 लाख का निर्माण पूरा किया जा चुका है। वहीं योजना के ग्रामीण संस्करण, पीएमएवाई-ग्रामीण के तहत 2.95 करोड़ लक्ष्य में से 2.50 करोड़ नवंबर 2023 तक बन चुके थे। आवास योजना के शहरी संस्करण में घरों के बनने की दर कम है और इसके तहत निर्मित कई घर खाली पड़े हैं।

आवास योजना के शहरी और ग्रामीण संस्करण का अंतर हमें क्या समझाता है? आखिर हमारे शहरों में निजी आवास की उच्च लागत के बावजूद सार्वजनिक आवास की शहरी मांग कम क्यों दिखाई देती है? आवास और शहरी मामलों की स्थायी समिति ने 2022 में यह दर्ज किया था कि शहरी आवास योजना के तहत कई घर रहने योग्य स्थिति में नहीं हैं, कहीं खिड़की-दरवाजे गायब हैं, तो कहीं असामाजिक तत्वों ने अवैध कब्जा कर रखा है। उसी वर्ष, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट में पीएमएवाई-यू के तहत लाभार्थियों के चयन से संबंधित कई मुद्दों का उल्लेख किया गया था। जैसे, कर्नाटक में कुछ लाभार्थियों को एकाधिक बार घर मिल गए, तो कुछ अपात्रों को भी घर दे दिए गए।

आवास योजना के शहरी संस्करण में घरों के बनने की दर कम है और इसके तहत निर्मित कई घर खाली पड़े हैं। नीति में बदलाव करना होगा।

यह भी सोचने वाली बात है कि शहरों में इस योजना के तहत घरों की मांग कम क्यों रही? सबसे पहले, ग्रामीण क्षेत्रों में आवास सब्सिडी का उपयोग परिवारों के स्वामित्व वाली भूमि पर घर बनाने के लिए किया जाता है। गांव में निवास का स्थान सरकार नहीं, बल्कि लोग स्वयं तय करते हैं। दूसरी ओर, शहरी सार्वजनिक आवास ऐसे विकल्प की पेशकश नहीं करते हैं।

दूसरी बात, इस योजना के तहत ग्रामीण घर एकल इमारत या निर्माण हैं, जबकि अधिकांश शहरी आवास अपार्टमेंट कॉम्प्लेक्स के तहत बने हैं। ऐसे आवासीय परिसर में अनेक मकान बनते हैं और अनेक संसाधनों का साझा उपयोग होता है। ऐसे में, सार्वजनिक संसाधनों का दुरुपयोग भी होता है और अंततः ये आवास खराब-रखरखाव के शिकार हो जाते हैं।

तीसरी बात, शहर में लोग ऐसी किसी जगह पर नहीं रहना चाहते, जहां उनके सुधार या विकास की संभावनाएं न हों। बेहतर पड़ोस या बेहतर जगह रहने से बच्चों की बेहतर स्कूली शिक्षा के साथ ही रोजगार की भी ज्यादा संभावना रहती है। चौथी बात, शहरों में एक बड़ी आबादी बाहर से आती है। ऐसे लोग सार्वजनिक आवास या किराये के अपार्टमेंट में जाना पसंद नहीं करते हैं। प्रवासियों के लिए स्थानीय सरकारी अधिकारियों से निपटना भी टेढ़ी खीर है।

क्या शहरों में सबको आवास मुहैया कराने के लिए आवास नीति एक नया दृष्टिकोण अपना सकती है? 2015 की राष्ट्रीय शहरी किराया आवास नीति में चयनित शहरों में रेंटल वाउचर योजना और एक पायलट प्रोजेक्ट के लिए फंड के प्रावधान का उल्लेख है। अगर किसी के पास आवास नहीं है, तो उसे सरकार किराया वाउचर दे सकती है, ताकि वह किराया चुका सके। कई देशों में परिवारों को ऐसी ही नीति के तहत आवास सुविधा मिली हुई है। एक चिंता यह भी है कि हमारे शहरों में आवास-किराया इतना अधिक हो गया है कि किराया सब्सिडी देने के बाद भी निजी आवास शहरी गरीबों के लिए बहुत हद तक दुर्लभ सुविधा रहेंगे।

शहरी आवास की आपूर्ति बढ़ाई जा सकती है, यह सरकार ने भी विधिवत स्वीकार किया है। सबसे पहले, किराया संबंधी नीतियों को आसान बनाकर ऐसे निजी आवासों को खोला जा सकता है, जो बंद पड़े हैं। शहरी किराया वाउचर योजना को सफलतापूर्वक लागू करना आसान नहीं है, पर ध्यान रहे, अधिकांश बड़े और अच्छे सुधार कठिन होते हैं और उनका विरोध भी होता है। यदि भारत को एक समृद्ध राष्ट्र बनना है, तो हमारे शहर इसके मूल में होंगे और चुनाव बाद शहरी आवास नीति पर पुनर्विचार करना ही पड़ेगा।

(ये लेखिका के अपने विचार हैं)

मनसा वाचा कर्मणा
कौन भेदेगा लक्ष्य

एक राजा के तीन पुत्र थे। उन तीनों में राजा बनने की योग्यता सबसे अधिक किसमें है, यह देखने के लिए उसने उनकी एक परीक्षा ली। एक दिन उसने अपने तीनों बेटों को बुलाया और उन्हें अपने तीर-कमान के साथ जंगल की तरफ ले गया। पहाड़ी की चोटी पर रुककर राजा ने घाटी में एक पेड़ पर बैठे गिद्ध की ओर इशारा किया, जिसे आसानी से निशाना बनाया जा सकता था। राजा ने सबसे पहले बड़े बेटे से कहा, 'मैं चाहता हूं कि तुम गिद्ध को मारो, पर पहले मुझे बताओ, तुम क्या देख रहे हो?'

राजकुमार ने जवाब दिया, 'पिताश्री, मैं बांस, चट्टानें, पेड़... सब देख पा रहा हूं।' 'काफी है' कहकर राजा ने दूसरे पुत्र को बुलाया और उससे भी वही प्रश्न किया। दूसरे बेटे ने कहा, 'मैं देख रहा हूं गेहूं के खेत और वह सूखा हुआ पेड़, जिस पर गिद्ध बैठा है।' 'छोड़ो' कहते हुए राजा ने अपने सबसे छोटे बेटे को हुक्म दिया कि वह गिद्ध का शिकार करे, मगर पहले वह उसके एक सवाल का जवाब दे और फिर राजा से उसी प्रश्न को दोहराया। छोटे बेटे ने अपने निशाने को एकटक देखते हुए कहा, 'मैं देख रहा हूं वह बिंदु, जहां पंख शरीर से जुड़े हैं...' और राजकुमार ने तीर को कमान से छोड़ दिया। पक्षी जमीन पर गिर पड़ा। तीसरा बेटा ही राजा बना।

ऐसी ही एक कथा महाभारत की है। एक दिन गुरु द्रोणाचार्य ने अपने सभी शिष्यों की परीक्षा ली। उन्होंने एक नकली पक्षी वृक्ष पर टांगकर कहा कि सभी उसकी दायीं आंख को भेदें। युधिष्ठिर और भीम के बाद तीसरे नंबर पर आए अर्जुन ने ही कहा था कि उसे सिर्फ पक्षी की दायीं आंख दिख रही है और उसका तीर सीधे लक्ष्य पर जाकर लगा। द्रोणाचार्य ने कहा, 'तुम सबके उत्तरों से ही मैं समझ गया था कि किसका तीर निशाने पर जाकर लगेगा। यदि तुम्हें वृक्ष दिखाई दे रहा था, तो तुम्हारा ध्यान केंद्रित नहीं था, तुम अपने कृत्य में समग्र नहीं थे। यदि तुम्हें केवल पक्षी दिखाई पड़ा, तब तुम केंद्रित तो थे, पर पूरी तरह से नहीं, अब भी तुम्हारा ध्यान पूरी तरह से लक्ष्य पर नहीं था। लेकिन जो अर्जुन ने कहा, वह निश्चित कर रहा था कि उसका तीर लक्ष्य तक पहुंचेगा ही।'

तुम अपने भीतर में खंड-खंड हो और हर खंड तुम्हें अलग दिशा में खींच रहा है। जीवन में परितृप्ति आए भी तो कैसे? तुम्हें इन सभी को एक करना होगा, अपनी ऊर्जा को एक स्पष्ट दिशा देनी होगी।

तुम्हारे पास ऊर्जा के अदम्य स्रोत हैं, लेकिन वे सभी व्यर्थ चले जाएंगे, यदि तुम्हारे पास दिशा की स्पष्टता न हो। जब तुम्हारे पास एक स्पष्ट दिशा होती है, तो तुम्हारी ऊर्जा मजबूती पाती है। सामान्यतः तुम बिखरे हुए होते हो। एक खंड एक दिशा में जाता हुआ, दूसरा खंड दूसरी दिशा में जाता हुआ। तुम अपने भीतर में खंड-खंड हो और हर खंड तुम्हें अलग दिशा में खींच रहा है। जीवन में परितृप्ति आए भी तो कैसे? तुम्हें इन सभी खंडों को एक करना होगा, अपनी ऊर्जा को एक स्पष्ट दिशा देनी होगी।

ओशो

बेंजामिन नेतन्याहू | इजरायली प्रधानमंत्री

अपने बंधकों की आजादी सुनिश्चित करने के लिए हम आने वाले दिनों में अपनी सैन्य व कूटनीतिक कोशिशें बढ़ाएंगे। इजरायल ने अब तक अपने बचाव व अपनी आक्रामकता, दोनों क्षमताओं को प्रदर्शित किया है। अभी बहुत कुछ आना बाकी है!

हिन्दुस्तान Hindustan | 75 साल पहले 24 अप्रैल, 1949

चीन का दुर्भाग्य

चीन में सरकार और कम्युनिस्टों के बीच समझौते की जो बातचीत चल रही थी और जिसके फलस्वरूप पिछले दो-तीन महीनों से गृह-युद्ध का जोर ठण्डा पड़ गया था, वह अन्त में विफल ही रही और इस विफलता के साथ ही युद्ध की आग पुनः भड़क उठी है। ऐसा मालूम होता है कि चीन के दुर्भाग्य का अभी अन्त नहीं हुआ है और युद्ध की विपत्ति उसके सिर पर अभी कुछ समय और मंडराती रहेगी। चीन की जनता युद्ध की मुसीबतों से ऊब चुकी है, किंतु उसे अभी उन मुसीबतों का और सामना करना पड़ेगा। मंचुरिया और उत्तरी चीन में कम्युनिस्ट फौजों को चमत्कारिक सफलताएं मिली थीं, इसका मुख्य कारण यह था कि सरकारी फौजों का नैतिक साहस टूट गया था। चीन के राष्ट्रपति मार्शल च्यांगकाई शेक ने अनुभव किया कि ऐसी सेना के बल पर, जिसका नैतिक साहस टूट चुका है, वह कम्युनिस्टों का सफल प्रतिरोध नहीं कर सकेंगे। अतः उन्होंने प्रकटतः राजनीति से संन्यास ले लिया और राष्ट्र की बागडोर प्रेसीडेण्ट ली सुंग जेन के हाथों में सौंप दी, ताकि युद्ध बन्द करवाने और कम्युनिस्टों से समझौता करने का मार्ग सरल हो जाये। किंतु ऐसा मालूम होता है कि मार्शल च्यांगकाई शेक का क्षेत्र-संन्यास केवल दिखावे के लिए था और वह इस बीच बराबर पर्दे की ओट से डोर हिलाते रहे हैं। उनके पक्षपाती कमांडरों ने प्रेसीडेण्ड ली के शांति-प्रयासों में काफी रुकावट डाली है। संभव है कि मार्शल च्यांगकाई शेक एक बार फिर कम्युनिस्टों के विरुद्ध युद्ध का संचालन करने के लिए मैदान में उतर आयें।

शांति-वार्ता के अर्से में दोनों ही पक्षों ने अपनी स्थिति को मजबूत बनाने का प्रयास किया है। कम्युनिस्टों को उस लम्बे-चौड़े प्रदेश में, जिस पर उनका हाल में अधिकार हुआ है, शांति और व्यवस्था कायम करनी थी। नया प्रदेश जीतने के पहले उनको जीते हुए प्रदेश को अच्छी तरह हजम करना था। अतः वह यांग्सी नदी के उत्तरी किनारे पर पहुंचकर रुक गये। यांग्सी नदी को पार करने के लिए विशेष तैयारी की आवश्यकता थी, वह उन्होंने इस बीच पूरी कर ली। चीन की सरकार अभी संधि-चर्चा को आगे जारी रखना चाहती थी, किंतु कम्युनिस्ट अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकते थे। कुछ सप्ताह बाद वर्षा प्रारंभ हो जाती और यांग्सी नदी में बाढ़ आ जाती। तब उसे पार करना असंभव हो जाता। ऐसी दशा में वे चीन की सरकार को विशेष रियायतें नहीं दे सकते थे।

मोइज्जू की इस जीत का संदेश समझें

मालदीव के संसदीय चुनाव में राष्ट्रपति मोहम्मद मोइज्जू की पार्टी 'पीपुल्स नेशनल कांग्रेस' ने भारी जीत दर्ज की है। 93 सदस्यीय संसद की 71 सीटों पर इस पार्टी ने कामयाबी हासिल की है। राजनीतिक विश्लेषक इस नतीजे से कुछ हैरान हैं, क्योंकि जब से मोइज्जू राष्ट्रपति बने हैं, उनकी सरकार भारत के खिलाफ मुखर है, इसके बावजूद कि वहां के विपक्ष ने भारत-विरोध को खतरनाक प्रवृत्ति बताया, ताजा जनादेश को गंभीरता से लेने की जरूरत है। हम भूले नहीं हैं, जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने साल की शुरुआत में पर्यटन को बढ़ावा देने के मकसद से लक्षद्वीप का दौरा किया था, तब मालदीव सरकार के कुछ मंत्रियों ने सोशल मीडिया पर भारतीय प्रधानमंत्री की तस्वीरों पर अभद्र टिप्पणी की थी। स्वाभाविक ही, पूरे देश में इसे लेकर नाराजगी फैली और राजनयिक स्तर पर भी भारत सरकार ने इस पर तीखा विरोध दर्ज कराया था। भारत में नाराजगी के स्तर को देखते हुए मोइज्जू सरकार तब बैकफुट पर चली गई थी, लेकिन उसने नई दिल्ली का विरोध बंद नहीं किया। वह लगातार चीन के एजेंडे पर काम करती रही है। ऐसे में, संसदीय चुनाव के संदेश को समझने की जरूरत है। भारत के एहसान तले दबे एक मुल्क के नागरिकों के रुख में यह बदलाव क्यों?

मालदीव ही क्यों, हमारे इर्द-गिर्द के ज्यादातर देशों में भारत-विरोधी तत्व काफी सक्रिय हो गए हैं और यह कोई छिपी हुई बात नहीं कि इसके पीछे चीन है। जो बांग्लादेश हमारी बदौलत अस्तित्व में आया; जिसे हाल ही में हजारों एकड़ अपनी भूमि हमने दी, ताकि उसके लोगों को आने-जाने में सहूलियत हो, वहां पर भारतीय वस्तुओं के बहिष्कार की मुहिम चल पड़ती है; जिस नेपाल के साथ हमारा बेटी-रोटी का नाता रहा है और आज भी बिना पासपोर्ट-वीजा के लोग एक-दूसरे देश में आते-जाते हैं, वहां के अवाम में भी हमारे खिलाफ भावनाएं बढ़ी हैं और उसकी सरकार पर बीजिंग का प्रभाव बढ़ता हुआ दिख रहा है। ऐसा क्यों है?

दरअसल, पिछले कुछ वर्षों से हम अमेरिका, यूरोप और जी-20 के देशों को ज्यादा अहमियत देने लगे हैं और पड़ोसी मुल्कों में अपने प्रभावों का विस्तार करना हमने छोड़ दिया है। चीन ने मौके का फायदा उठाया है। चाहे मालदीव हो या नेपाल या बांग्लादेश, बीजिंग ने बड़े-बड़े कर्ज और विशाल विकास परियोजनाओं के जरिये न सिर्फ सरकारों, बल्कि वहां की जनता की सोच को भी प्रभावित किया है। इसी का नतीजा है कि उसकी पसंद की सरकारें काठमांडू से माले तक काबिज होने लगी हैं। विदेश-नीति के हमारे नियंताओं को इस पर गौर करने की जरूरत है।

अलका धीमान, टिप्पणीकार

अनुलोम-विलोम

मालदीव चुनाव

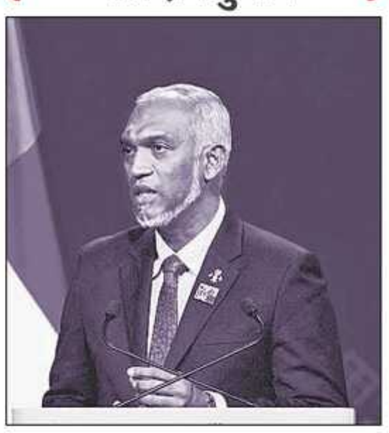

सही रास्ते पर बढ़ रही हमारी विदेश नीति

मालदीव में चीन समर्थक पार्टी की जीत हुई है। मगर इसे लेकर काफी बढ़ा-चढ़ाकर बातें की जा रही हैं। वास्तविकता यह है कि इससे भारत की सेहत पर कोई असर नहीं पड़ने वाला। इसको इस तथ्य से समझा जा सकता है कि मालदीव की कुल आबादी भारत के एक महानगर के बराबर भी नहीं है। इसलिए वहां की हार-जीत को लेकर बहुत फिक्र करने की जरूरत नहीं है। दुनिया जानती है कि 1988 में जब वहां की तत्कालीन गयूम सरकार को गिराने के लिए बगावत हुई थी, तब प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने भारतीय सेना भेजकर वह सरकार बचाई थी। भारत हमेशा से अपने पड़ोसियों की मदद करता रहा है। कोरोना के समय भी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने पड़ोसी देशों को बड़े पैमाने पर मुफ्त वैक्सीन मुहैया कराई थी। इस उदार नीति ने ही भारत की विदेश नीति की साख दुनिया में मजबूत की है।

इसलिए पाकिस्तान में शहबाज सरकार बने या मालदीव में मोइज्जू सरकार, उससे इस्लामी दुनिया के रुख में भी कोई खास फर्क नहीं आने वाला। पश्चिम एशिया के तमाम प्रभावशाली इस्लामी देशों के साथ हमारे संबंध दिन-ब-दिन प्रगाढ़ होते जा रहे हैं।

भारत आज दुनिया की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है, जल्दी ही हमारी इकोनॉमी तीसरे नंबर पर होगी, हमारे पास विशाल बाजार है और जैसे-जैसे हमारे मध्यवर्ग का आकार बढ़ता जाएगा, दुनिया भर के देश हमसे कारोबार करने को लालायित होते जाएंगे। ऐसे में, उन देशों से क्या मुकाबला, जिन्हें अपने रोजमर्रा के खर्चे के लिए दुबई के 'शहंशाह' या बीजिंग के 'बादशाह' के आगे हाथ फैलाना पड़ता है?

अपने अस्तित्व में आने के समय से ही पाकिस्तान हमारे पीछे पड़ा हुआ है। भारत-ग्रंथि में उसने हम पर कई युद्ध थोप दिए, मगर इनसे नुकसान किसका हुआ? आज उसकी हालत दयनीय है, तो सिर्फ कमअक्ल रहनुमाओं के कारण। इस बात को वहां का बौद्धिक समाज तो बहुत पहले से जानता है, अब यह सच आम अवाम पर भी जाहिर हो चुका है, इसलिए मालदीव के लोगों को मोइज्जू के रूप में भुट्टो और जियाउल हक चाहिए, तो उनको मुबारक! यह वहां के लोगों को ही तय करना है कि उनको पाकिस्तान बनना है या बांग्लादेश? जहां तक भारत की विदेश नीति की बात है, तो जब यह कभी वाशिंगटन या मास्को से प्रभावित नहीं हुआ, तो अन्य देश की बात ही क्या! मालदीव के लोगों को जल्द ही अपनी भूल का एहसास होगा और आने वाले समय में वे इसे दुरुस्त भी कर लेंगे।

राकेश सिंह, टिप्पणीकार